Visit **Dwarkadheeshvastu.com** For

FREE **Vastu Consultancy, Music, Epics, Devotional Videos**
Educational Books, Educational Videos, Wallpapers

———— **** ————

All Music is also available in **CD** format. **CD Cover** can also be print with your Firm Name

———— **** ————

We also provide this whole Music and Data in **PENDRIVE** and **EXTERNAL HARD DISK.**

Contact : Ankit Mishra (+91-8010381364, dwarkadheeshvastu@gmail.com)

॥ श्रीहरिः॥

श्रीकालिका पुराण

श्रीकालिका पुराण

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ सं.	विषय	पृष्ठ सं.
कालिका पुराण की महिमा	५	क्षिप्र पर्वत और क्षिप्रा नदी की कथा	१०६
श्री काली के सम्बन्ध में	६	चन्द्रमा को शाप का वर्णन	११०
श्री काली का स्वरूप	७	वशिष्ठजी द्वारा सन्ध्या को दीक्षा देना	१३५
काली की महिमा	८	वशिष्ठ अरुन्धति विवाह	१४३
कालिका अवतरण वर्णन	९	सती का विभूति वर्णन	१५५
बसन्त आगमन वर्णन	२३	सर्ग इत्यादि का वर्णन	१५९
काली स्तुति वर्णन	२७	आदि सृष्टि का वर्णन	१६५
योग निद्रा स्तुति	३३	रुद्र और ब्रह्मा का नाम विभाजन	१६८
मदन वाक्य वर्णन	३९	सृष्टि कथन	१७२
शिव, शांता, महामाया योग, निद्रा, जगन्मयी	४६	सारासार निरूपण	१७६
श्रीहरि द्वारा शिव का अनुनयन	४९	श्री वाराह यज्ञोत्पत्ति वर्णन	१९७
सती से विवाह प्रस्ताव	५४	कपिल अवतार आख्यान	२००
तीनों देवों का एकत्व प्रतिपादन	६०	श्री कूर्म अवतार कथा	२११
तीनों देवों का अनन्यत्व	६५	शरभ काया त्याग का वर्णन	२१७
हर कोप शमन वर्णन	७०	कामाख्या देवी वर्णन	२१९
शिव सती विहार वर्णन	७४	नरकासुर उपाख्यान	२२२
हिमाद्रि निवास गमन	७८	नारद आगमन वर्णन	२३७
सती के देह त्याग वर्णन	८२	भगवान शिव का हिमवान में निवास	२४४
दक्ष यज्ञ का आयोजन	८३	गौरी परीक्षा वर्णन	२५८
दक्ष यज्ञ-भंग वर्णन	८८	काली-हर समागम वर्णन	२६७
विजया सखी के शोक विचार	९२		
सती के शरीर के खण्ड-खण्ड होकर गिरना	९६		

विषय	पृष्ठ सं.
गौरी-शिव विहार वर्णन	.....२७२
बेताल भैरव उत्पत्ति	.....२७६
कामरूपी पीठ का वर्णन	.....२८१
अठारह पटल वाला महामाया कल्प	.....२९२
महामाया कल्प वर्णन	.....२९५
जप विधि और माला का वर्णन	.....३०१
महामाया मन्त्र का कवच	.....३०७
मन्त्र साधना के अंग	.....३१३
देवी तन्त्र कथन	.....३२५
चण्डिका मन्त्र वर्णन	.....३३१
महिषासुर उपाख्यान	.....३३७
कामाख्या महात्म्य	.....३४९
नृप धर्म वर्णन	.....३५८
सदाचार कथन	.....३६७
राज्याभिषेक वर्णन	.....३७३
शक्रध्वजोत्सव वर्णन	.....३८२
राजा के पालनीय नियम	.....३८६
सदाचार वर्णन	.....३९०
आसन के प्रकार और भेद	.....४०२
देव पूजा के अन्य उपचार	.....४०७
आभूषणों के नाम व प्रकार आदि	.....४०८
दीप पूजा का विधान	.....४१३
प्रदक्षिणा और प्रणाम निर्णय	.....४१८
नैवेद्य अर्पण	.....४१९
कामाख्या कवच माहात्म्य वर्णन	.....४२१
मातृका न्यास वर्णन	.....४२६
मार्कण्डेय कथन	.....४२८
काली का अर्थ तत्त्व	.....४३२
काली साधना मन्त्र	.....४३२
श्री काली अपराध क्षमापन स्तोत्रम्	.....४३६
श्रीकाली के सम्बन्ध में प्रयुक्त होनेवाले शब्दों का यथार्थ रूप	.....४३८
श्री कालिकाष्टक	.....४४०
श्री काली स्तुति	.....४४३
श्री काली चालीसा	.....४४४
आरती : श्रीकाली जी की	.....४४६

नम्र निवेदन

पुराण भारत तथा भारतीय संस्कृति की सर्वोत्तम निधि हैं। ये अनन्त ज्ञान-राशि के भण्डार हैं। इनमें इहलौकिक सुख-शान्ति से युक्त सफल जीवन के साथ-साथ मानवमात्र के वास्तविक लक्ष्य–परमात्मतत्त्व की प्राप्ति तथा जन्म-मरण से मुक्त होने का उपाय और विविध साधन बड़े ही रोचक, सत्य और शिक्षाप्रद कथाओं के रूप में उपलब्ध हैं। इसी कारण पुराणों को अत्यधिक महत्त्व और लोकप्रियता प्राप्त है, परंतु आज ये अनेक कारणों से दुर्लभ होते जा रहे हैं।

कालिका पुराण की महिमा

जो एक बार भी इस कालिका पुराण का पाठ करता है वह सभी कामनाओं को प्राप्त करके अमृतत्व अर्थात् देवत्य को प्राप्त किया करता है। जिससे मन्दिर में यह लिखा हुआ उत्तम पुराण सदा स्थित रहता है, हे द्विजो! उसको कभी विघ्न नहीं होता जो पुराण सदा स्थित रहता है, हे द्विजो! उसको कभी विघ्न नहीं होता। जो प्रतिदिन इसका गोपनीय अध्ययन करता है जे कि यह परम तन्त्र है। हे द्विज श्रेष्ठों! उसने यहाँ पर ही सम्पूर्ण वेदों क अध्ययन कर लिया है। इस कारण से इससे अधिक अन्य कुछ भी नहीं है। विलक्षण पुरुष इसके अध्ययन से कृतकृत्य हो जाता है।

इसके अध्ययन तथा श्रवण करने वाला पुरुष परम सुखी तथा लोक में बलवान् और दीर्घ आयु वाली भी हो जाता है। जो निरन्तर लोक का पालन करता है और अन्त में विनाश करने वाला है। यह सम्पूर्ण भ्रम या अभ्रम से युक्त है मेरा ही स्वरूप है, अतएव उसके लिए नमस्कार है। योगियों के हृदय में जिसका प्रपञ्च प्रधान पुरुष है, जो पुराणों के अधिपति भगवान् विष्णु और वह भगवान् शिव आप सबके ऊपर प्रसन्न हों। जो उग्र हेतु है, पुराण पुरुष है, जो शाश्वत तथा सनातन

रूप ईश्वर है, जो पुराणों का करने वाला और वेदों तथा पुराणों के द्वारा जानने के योग्य है उस पुराण शेष के लिए मैं स्तवन करता हूँ और अभिवादन करता हूँ । जो इस प्रकार से समस्त जगत् का विशेष रूप से स्मरण किया करती है, जो मधुरिपु को भी मोह कर देने वाली हैं, जिसका स्वरूप रमा है और शिवा के स्वरूप से जो भगवान् शंकर का रमण कराया करती है माया आपके विभव को और शुभों को वितरित करे ।

श्री काली के सम्बन्ध में

मार्कण्डेय पुराण के सप्तशती खण्ड में जिन काली देवी का वर्णन है अथवा जिनका जन्म अम्बिका के ललाट से हुआ है वे काली श्री दुर्गा जी के स्वरूपों में से ही एक स्वरूप है तथा आद्या महाकाली से सर्वथा भिन्न है । भगवती आद्या काली अथवा दक्षिणा काली अनादिरूपा सारे चराचर की स्वामिनी हैं जबकि पौराणिक काली तमोगुण की स्वामिनी हैं । दक्षिण दिशा में रहने वाला अर्थात् सूर्य का पुत्र यम काली का नाम सुनते ही डरकर भाग जाता है तथा काली उपासकों को नरक में ले जाने की सामर्थ्य उसमें नहीं है इसलिए श्री काली को 'दक्षिणा काली' और 'दक्षिण कालिका' भी कहा जाता है । दस महाविद्याओं में काली सर्वप्रधान हैं । अतः इन्हें महाविद्या भी कहा जाता है । वही स्त्रीरूपी 'वामा' 'दक्षिण' पर विजय पाकर मोक्ष प्रदायिनी बनी । इसलिए उन्हें तीनों लोकों में 'दक्षिणा' कहा जाता है ।

श्री काली की उपासना से समस्त विघ्न उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार प्रज्जवलित अग्नि में सभी पतंगे भस्म हो जाते हैं । कालिका पुराण का पाठ करनेवाले साधक की वाणी गंगा के प्रवाह की भाँति गद्य-पद्यमयी हो जाती है और उसके दर्शन मात्र से ही प्रतिवादी लोग निष्प्रभ हो जाते हैं । उसके हाथ में सभी सिद्धियाँ बनी रहती हैं इसमें संदेह नहीं है । मार्गशीर्ष मास की कृष्णपक्ष की अष्टमी कालाष्टमी होती है जो उपासक इन दिन काली की सन्निधि में उपवास कर जागरण करते हैं, वे सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं । सात अँगुल

से लेकर बारह अँगुल तक की प्रतिमा घर पर रखने का शास्त्रों का मत है । किन्तु इससे अधिक परिमाण की मूर्ति मन्दिर के लिए उत्तम कही गई है ।

काली देवी की प्रतिष्ठा माघ और आश्विन मास में उत्तम तथा समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाली होती है । इन मासों में भी विशेष रूप से कृष्ण पक्ष में प्रतिष्ठा करना श्रेष्ठ माना गया है ।

श्री काली का स्वरूप

काली देवी का वर्णश्याम है जिसमें सभी रंग सन्निहित हैं । भक्तों के विकार-शून्य हृदयरूपी शमशान में उनका निवास है । भगवती चित्तशक्ति में समाहिम प्राणशक्तिरूपी शव के आसन पर स्थित हैं । उनके ललाट पर अमृततत्व बोधक चन्द्रमा है और वे त्रिगुणातीत निर्विकार केशिनी हैं । सूर्य, चन्द्र और अग्नि ये तीनों उनके नेत्र हैं जिनसे वे तीनों कालों को देखती हैं । वे सतोगुण रूपी उज्ज्वल दाँतों से रजोगुण-तमोगुण रूपी जीभ को दबाये हुए हैं । सारे संसार का पालन करने में सक्षम होने के कारण वे उन्नत पीनपयोधरा हैं । वे पचास मातृका अक्षरों की माला धारण करती हैं।तथा मायारूपी आवरण से मुक्त हैं तथा सभी जीव मोक्ष न होने तक उनके आश्रित रहते हैं ।

वे निष्काम भक्तों के मायारूपी पाश को ज्ञानरूपी तलवार से काट देती हैं । वे कालरूपी शक्ति को वास्तविक शक्ति देने वाली विराट् भगवती हैं ।

इसके अतिरिक्त रक्तबीजमर्दिनी श्री काली का स्वरूप वर्णन इस प्रकार है–

सम्पूर्ण विकराल देह चमकते हुए काले रंग की है । उनकी बड़ी-बड़ी डरावनी आँखें और मुख से जीभ को बाहर निकाले हुए हैं, जो गहरे लाल रंग की है । वह नरमुण्डों की माला तथा कटे हुए हाथों का आसन धारण किए हुए हैं । उनके एक हाथ में खड्ग, दूसरे में त्रिशूल, तीसरे में खप्पर तथा चौथे हाथ में भक्तों को आशीर्वाद प्रदान करती हैं ।

काली की महिमा

- देवी वरदान देने में बहुत चतुर हैं इसलिए उन्हें दक्षिणा कहा जाता है।
- जिस प्रकार कार्य की समाप्ति पर दक्षिणा फल देने वाली होती है उसी प्रकार देवी भी सभी फलों की सिद्धि को देती हैं।
- दक्षिणामूर्ति भैरव ने उनकी सर्वप्रथम पूजा की इस कारण भी भगवती का नाम दक्षिणाकाली है।
- पुरुष को दक्षिण और शक्ति को 'वामा' कहा जाता है। वही वामा दक्षिण पर विजय पाकर महामोक्ष देने वाली बनी।
- भगवती काली अनादिरूपा आद्या विद्या हैं। हे ब्रह्मस्वरुपिणी एवं कैवल्यदात्री हैं।
- पाँचों तत्वों तक शक्ति तारा की स्थिति है और सबके अन्त में काली ही स्थित हैं। अर्थात् जब महाप्रलय में आकाश का भी लय हो जाता है। तब यही भगवती काली चित्तशक्ति के रूप में विद्यमान रहती हैं।
- इन्हीं भगवती की वेद में भद्रकाली के रूप में स्तुति की गई हैं।
- ये अजन्मा और निराकार स्वरूपा हैं। भावुक आराधक अपनी भावनाओं तथा देवी के गुण कर्मों के अनुरुप उनके काल्पनिक साकार रूप की स्तुति करते हैं। अपने ऐसे भक्तों को भगवती काली मुक्ति प्रदान करती हैं।
- भगवती काली अपने उपासकों पर स्नेह रखने वाली तथा उनका कल्याण करने वाली हैं।
- इस प्रकार भगवती की दक्षिणाकाली के नाम से अनेकानेक उपलब्धियाँ हैं। जिस भक्त को जो भी उपलब्धि हो, या जो भी सिद्धि चाहे उसे उसी रूप में महाकाली को स्वीकार करना चाहिए।

ॐ

॥ कालिकायै विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि तन्नो घोरे प्रचोदयात् ॥

श्रीकालिका पुराण

कालिका अवतरण वर्णन

पूर्ण रूप से एक ही निष्ठा में रहने वाले हृदय से समन्वित योगियों के द्वारा सांसारिक भय और पीड़ा के विनाश करने के अनेकों उपाय किए गये हैं। ऐसे भगवान् हरि के दोनों चरण कमल सर्वदा आप सबकी रक्षा करें जो समस्त योगीजनों के चित्त में अविद्या के अन्धकार को दूर हटाने के लिए सूर्य के समान हैं तथा यतिगणों की मुक्ति का कारण स्वरूप हैं। विभु के जन्म में शुद्धि-कुबुद्धि के हनन करने वाली है और इन जन्तुओं के समुदाय को विमोहित कर देने वाली है; वह माया आपकी रक्षा करे। समस्त जगती के आदिकाल में विराजमान पुरुषोत्तम ईश्वर को (जो नित्य ही ज्ञान से परिपूर्ण हैं उनको) प्रणाम करके मैं कालिका पुराण का कथन करूँगा।

हिमालय के समीप में विराजमान मुनियों ने परमाधिक श्रेष्ठ मार्कण्डेय मुनि के चरणों में प्रणिपात करके उनसे कर्मठ प्रभृति मुनिगण ने पूछा था कि हे भगवान्! आपने तात्विक रूप से समस्त शास्त्रों और अंगों के सहित सभी वेदों को सब भली-भाँति मन्थन करके जो कुछ भी साररूप था वह सभी भाँति से वर्णन कर दिया है। हे ब्रह्मन्! समस्त वेदों में और सभी शास्त्रों में जो-जो हमको संशय हुआ था वही आपने ज्ञानसूर्य के द्वारा अन्धकार के ही समान विनिष्ट कर दिया है। हे द्विजों में सर्वश्रेष्ठ! आपके प्रसाद अर्थात् अनुग्रह से हम सब प्रकार से वेदों और शास्त्रों में संशय से रहित हो गये हैं अर्थात् अब हमको किसी में कुछ भी संशय नहीं रहा है।

हे ब्राह्मण ! जो ब्रह्माजी ने कहा था वह रहस्य के सहित धर्मशास्त्र आपसे सब ओर से अध्ययन करके हम सब कृतकृत्य अर्थात् सफल हो गए हैं। अब हम लोग पुन: यह श्रवण करने की इच्छा करते हैं कि पुराने समय में काली देवी ने हरि प्रभु का जो परमयति और ईश्वर थे, उन्हें किस प्रकार से सती के स्वरूप से मोहित कर दिया था। जो भगवान् हरि सदा ही ध्यान में मग्न रहा करते थे, यम वाले और यतियों में परम श्रेष्ठ थे तथा संसार से पूर्णतया विमुख रहा करते थे, उनको संक्षोभित कर दिया था अथवा प्रजापति दक्ष की पत्नियों में परम शोभना सती किस रीति से समुत्पन्न थी तथा पत्नी के पाणिग्रहण करने में भगवान शम्भु ने कैसे अपना मन बना लिया था ? प्राचीन समय में किस कारण से तथा किस रीति से दक्ष प्रजापति के कोप से सती ने अपनी देह का त्याग किया था अथवा फिर वही सती गिरिवर हिमवान् की पुत्री के रूप में कैसे समुत्पन्न हुई ? फिर उस देवी ने भगवान् कामदेव के शत्रु श्री शिव का आधा शरीर कैसे आहृत कर लिया था ? हे द्विजश्रेष्ठ! यह सभी कथा आप हमारे समक्ष विस्तार के साथ वर्णित कीजिए। हे विपेन्द्र ! हम यह जानते हैं कि आपके समान अन्य कोई भी संशयों का छेदन करने वाला नहीं है और भविष्य में भी न होगा सो अब आप यह समस्त वृतान्त बताने की कृपा कीजिए।

मार्कण्डेय जी कहा—आप समस्त मुनिगण अब श्रवण वह करिये जो कि मेरा गोपनीय से भी अधिक गोपनीय है तथा परम पुण्य-शुभ करने वाला, अच्छा ज्ञान प्रदान करने वाला तथा परम कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। इसे प्राचीन समय में ब्रह्माजी ने महान् आत्मा वाले नारद जी से कहा था। इसके पश्चात् नारद जी ने भी बालखिल्यों के लिए बताया था। उन महात्मा बालखिल्यों ने यवक्रीत मुनि से कहा था और यवक्रीत मुनि ने असित नामक मुनि को यही बताया था। हे द्विजगणों ! उन असित मुनि ने विस्तारपूर्वक मुझको बताया था और मैं अब पुरातन कथा को आप सब लोगों को श्रवण कराऊँगा। इसके पूर्व मैं इस जगत् के प्रति परमात्मा चक्रपाणि प्रभु को प्रणिपात करता हूँ।

वे परमात्मा व्यक्त और अव्यक्त सत् स्वरूप वाले हैं–वहीं व्यक्ति के रूप से समन्वित हैं। उनका स्वरूप स्थूल है और सूक्ष्म रूप वाला भी है, वे विश्व के स्वरूप वाले वेधा हैं, वे परमेश नित्य हैं और उनका स्वरूप नित्य है तथा उनका ज्ञान भी नित्य है। उनका तेज निर्विकार है। वे विद्या और अविद्या के स्वरूप वाले हैं, ऐसे कालरूप उन परमात्मा के लिए नमस्कार है। परमेश्वर निर्मल हैं, विरागी हैं, व्यापी और विश्वरूप वाले हैं तथा सृष्टि (सृजन) स्थिति (पालन) और अन्त (संहार) के करने वाले हैं, उनके लिए प्रणाम है।

जिसका योगियों के द्वारा चिन्तन किया जाता है, योगीजन वेदान्त पर्यन्त चिन्तन करने वाले हैं, जो अन्तर में परम ज्योति के स्वरूप हैं उन परमेश प्रभु के लिए प्रणाम करता हूँ। लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्माजी ने उनकी आराधना करके समस्त सुर-असुर और नर आदि की प्रजा का सृजन किया था। उन ब्रह्माजी से दक्ष जिनमें प्रमुख थे ऐसे प्रजापतियों का सृजन करके मरीचि, अत्रि, पुलह, अंगिरस, ऋतु, पुलस्त्य, वशिष्ठ, नारद, प्रचेतस, भृगु–इन सब दश मानस पुत्रों का उन्होंने सृजन किया था। उसी समय में उनके मानस से सुन्दर रूप वाली वरांगनाओं की समुत्पत्ति हुई थी। वह नाम से सन्ध्या विख्यात हुई थी, उसका सायं-सन्ध्या का यजन किया करते हैं। उस जैसी अन्य कोई भी दूसरी वरांगना देवलोक, मर्त्यलोक और रसातल में भी नहीं हुई थी। ऐसी समस्त गुण-गणों की शोभा से सम्पन्न तीनों कालों में भी नहीं हुई है और न होगी। वह स्वाभाविक सुन्दर और नीले केशों के भार से शोभित होती है। हे द्विज श्रेष्ठों ! वह वर्षा ऋतु में मोरनी की भाँति विचित्र केशों के भार से शोभाशालिनी थी। आरक्त और मलिक तथा कर्णों पर्यन्त अलकों से इन्द्र के धनुष और बाल चन्द्र के सदृश शोभायमान थी। विकसित नीलकमल के समान श्याम वर्ण से संयुक्त दोनों नेत्र चकित हिरनी के समान चंचल और शोभित हो रहे थे। हे द्विज श्रेष्ठों ! कानों तक फैली हुई स्वाभाविक चंचलता से संयुक्त परम सुन्दर दोनों भौहें थीं जो कामदेव के धनुष के सदृश नील थीं। दोनों

भौहों के मध्य भाग से नीचे और निम्न भाग से विस्तृत और उन्नत नासिका थी जो मानों ललाट से तिल के पुण्य के ही समान लावण्य को द्रवित कर रही थी। उनका मुख रक्तकमल की आभा वाला और पूर्ण चन्द्र के तुल्य प्रभा से समन्वित था जो बिम्ब फल के सदृश अधरों की अरुणिमाओं और मनोहर शोभित हो रहा था। सौ सूर्य के समान और लावण्य के गुणों से परिपूर्ण मुख था। दोनों ओर से चिबुक (ठोड़ी) के समीप पहुँचने के लिए उसके दोनों कुच मानों समुद्यत हो रहे थे। हे विप्रगणों ! उस सन्ध्या देवी के दोनों स्तवन राजीव (कमल) की कालिका के समान आकार वाले थे, पीन और उत्तुङ्ग निरन्तर रहने वाले थे। उन कुचों के मुख श्याम वर्ण के थे जो कि मुनियों के हृदय को भी मोहित करने वाले थे। सभी लोगों ने कामदेव की शक्ति के तुल्य ही उस सन्ध्या के मध्यभाग को देखा था जिसमें बलियाँ पड़ रही थीं तथा मध्य भाग ऐसा क्षीण था जैसे मुट्ठी में ग्रहण करने के योग्य रेशमी वस्त्र था।

उनके दोनों ऊरुओं का जोड़ा ऐसा शोभायमान हो रहा था जो ऊर्ध्वभाग में स्थूल था और करभ के सदृश विस्तृत था और थोड़ा झुका हुआ हाथी की सूँड़ के समान था। जो अँगुलियों के दल से संकुल कुसुमायुध अर्थात् कामदेव के तुल्य ही दिखलाई दे रहा था। उस सुन्दर दर्शन वाली, शरीर की रोमावली से आवृत मुख पर, जिसके पसीने की बूँदें झलक रही थीं, जो दीर्घ नयनों वाली, चारुहास से समन्वित, तन्वी अर्थात् कृश मध्य भाग वाली जिसके दोनों कान परम सुन्दर थे, तीन स्थलों में गम्भीरता से युक्त तथा छः स्थानों से उन्नत उसको देखकर विधाता उठकर हृद्‌गत को चिन्तन करने लगे थे। वे सृजन करने वाले दक्ष प्रजापति मानस पुत्र मरीचि आदि सब उस परवर्णिनी को देखकर समत्सुक होकर चिन्तन करने लगे थे। इस सृष्टि में इसका क्या कर्म होगा अथवा यह किसकी वर-वर्णिनी होगी। यही वे सभी बड़ी ही उत्सुकता से सोचने लगे थे। हे मुनि सत्तमो ! इस तरह से चिन्तन करते हुए उन ब्रह्माजी के मन से वल्गु पुरुष आविर्भूत होकर

विनि:सृत हो गया था।

वह पुरुष सुवर्ण के चूर्ण के समान पीली आभा से संयुक्त था, परिपुष्ट उसका वक्ष स्थल था, सुन्दर नासिका थी, सुन्दर सुडौल ऊरु जंघाओं वाला था, नील वेष्टित केशर वाला था, उसकी दोनों भौंहें जुड़ी हुई थीं, चंचल और पूर्ण चन्द्र के सदृश मुख से समन्वित था। कपाट के तुल्य विशाल हृदय पर रोमावली से शोभित था शुभ्र मातंग की सूँड़ के समान पीन तथा विस्तृत बाहुओं से संयुक्त था, रक्त हाथ, लोचन, मुख, पाद और करों से उपद्रव वाला था। उस पुरुष का मध्य भाग क्षीण अर्थात् कुश था, सुन्दर दन्तावली थी वह हाथी के सदृश कन्धरा से समन्वित था। विकसित कमल के दलों के समान उनके नेत्र थे तथा केशर घ्राण से तर्पण था, कम्बू के समान ग्रीवा से युक्त, मीन के केतु वाला प्राँश और मकर वाहन था। पाँच पुरुषों के आयुधों वाला, वेगयुक्त और पुष्पों के धनुष से विभूषित था। कटाक्षों के पात के द्वारा दोनों नेत्रों को भ्रमित करता हुआ परम कान्त था। सुगन्धित वायु से भ्रान्त और शृंगार रस से सेवित इस प्रकार के उस पुरुष को देखकर वे सब मानस पुत्र जिनमें दक्ष प्रजापति प्रमुख थे, विस्मय से आविष्ट मन वाले होते हुए अत्यधिक उत्सुकता को प्राप्त हुए थे और मन विकार को प्राप्त हो गया था। वह पुरुष भी जगतों के प्रति और सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्माजी का अवलोकन करने को विनम्रता से नीचे की ओर अपनी कन्धरा को झुकाकर प्रणिपात करते हुए बोला।

पुरुष ने कहा–हे ब्रह्मण ! मैं अब क्या करूँ ? जो भी आप कराना चाहते हो उसी कर्म से मुझे नियोजित कीजिए। हे विधे ! वह कर्म न्यायोचित होवे जिसके करने से शोभा होती है। हे लोकों के ईश! क्योंकि आप तो जगतों के सृजन करने वाले हैं। अतएव जो भी योग्य अभिधाम हो, स्थान हो और जो मेरी स्त्री हो, वही मेरे लिए दीजिए। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–उस महान् आत्मा वाले पुरुष के इस रीति वाले वचन का श्रवण करके अपनी ही सृष्टि से अत्यन्त विस्मित होकर

एक क्षण तक कुछ भी ब्रह्माजी ने नहीं कहा था। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने अपने मन को सुसंयमित करके और विस्मय का परित्याग करके उसके कर्म के उद्देश्य को आवाहन करते हुए उस पुरुष से कहा था। ब्रह्माजी ने कहा–इस सुन्दर रूप और पाँच पुष्पों के बाणों द्वारा पुरुषों तथा स्त्रियों को मोहित करते हुए तुम सनातनी सृष्टि का सृजन करो। न तो देव, न गन्धर्व, न किन्नर और महोरग, न असुर, न दैत्य, न विद्याधर और न राक्षस, न यक्ष, न पिशाच, न भूत, न विनायक, न गुह्यक अथवा न सिद्ध, न मनुष्य तथा पक्षीगण ये सब तेरे शर के लक्ष्य नहीं होंगे। जो भी पशु, मृग, कीट, पतंग और जल में उत्पन्न होने वाले जीव हैं वे सभी जो कि तेरे शर के लक्ष्य होते हैं वे लक्ष्य नहीं होंगे। मैं अथवा वासुदेव स्थाणु अथवा पुरुषोत्तम ये सभी तेरे वश में हो जायेंगे। अन्य प्राणीधारियों की तो बात ही क्या है। तुम प्रच्छन्न रूप वाला होकर सदा जन्तुओं के हृदय में प्रवेश करते हुए स्वयं सुख को हेतु बनकर सनातनी सृष्टि की रचना करो। सदा ही तेरे पुष्पों के बाण का वह मन मुख्य लक्ष्य होगा। आप सभी प्राणियों के लिए नित्य ही मद और मोद के करने वाले बनो। यही तुम्हारे लिए कर्म मैंने कर दिया है जो कि पुनः सृष्टि करने का प्रवर्त्तक है। अब मैं आपका नाम भी बतलाऊँगा जो कि आपके योग्य ही होगा। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इसके अनन्तर यही कहकर सुरश्रेष्ठ मानसों के मुखों का अवलोकन करके क्षण भर में ही अपने पद्मासन पर उपविष्ट हो गये।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इसके अनन्तर उनके अभिप्राय के ज्ञान रखने वाले सब मुनिगण उस समय में उचित मरीच अत्रि प्रमुखों में नाम रखा था। सृष्टि के सृजन करने वाले दक्ष प्रभृति ने मुख के अवलोकन से ही अन्य सारे वृत्तान्त का ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने स्थान और पत्नियों को दे दिया था। ऋषियों ने कहा–तुम हमारे विधाता के चित्त का प्रमथन करके समुत्पन्न हुए हो अतएव तुम मन्थन नाम से ही लोक में विख्यात होओगे। जगती में तुम कामरूप हो और ऐसा तुम्हारे समान अन्य कोई भी नहीं है। अतएव हे मनोभव ! तुम काम नाम से भी जाने

जाओ। मदन करने से तुम मदन नाम वाले भी हो और दर्प से शम्भू भगवान् के कंदर्प हो इसलिए तुम लोक में कन्दर्प नाम से भी प्रसिद्ध होओगे। तुम्हारे बाणों का जो पराक्रम है, ब्रह्मास्त्रों का भी उस प्रकार का नहीं होगा।

स्वर्ग में, मृत्युलोक में, पाताल में और सनातन ब्रह्मलोक में तुम्हारे सभी स्थान हैं क्योंकि आप सर्वव्यापी हैं। यह दक्ष आपको पत्नी को स्वयं ही देगा जो कि परम शोभना है। हे पुरुषोत्तम! जो यह आदि में होने वाला यथेष्ट प्रजापति है और यह कन्या ब्रह्माजी के मन से समुत्पन्न शमरूपा है जो सन्ध्या नाम से सभी लोक में विख्यात होगी। क्योंकि ध्यान करते हुए ब्रह्मा जी से भली-भाँति यह वरांगना समुत्पन्न हुई है इसलिए इस लोक में 'सन्ध्या' इस नाम से इसकी ख्याति होगी। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–हे द्विजोत्तमो ! यह कहकर सब मुनिगण चुप होकर संस्थित हो गये थे। उन्होंने ब्रह्माजी के मुख का अवेक्षण किया और उनके ही समक्ष में विनय से अवनत होकर स्थित हो गए थे। इसके अनन्तर कामदेव भी कुसुमों से उद्भूत अपने दण्ड (धनुष) को ग्रहण करके कान्ता के भुवों के सदृश वेल्लित वह धनुष था तथा वह उन्मादन, इस नाम से विख्यात हो गया था।

हे द्विजोत्तमो ! उसने उसी भाँति पाँचों कुसुमों से विनिर्मित अस्त्रों को ग्रहण किया था जिनके निम्नांकित नाम हैं–हर्षण, रोचन, मोहन, शोषण और मरण। इन संज्ञा वाले वे बाण या अस्त्र हैं जो मुनियों के भी मन में मोह उत्पन्न कर देने वाले हैं। उस कामदेव ने जो कि प्रच्छन्न स्वरूप से संयुत था वहीं पर निश्चय के विषय में सोचने लगा था। यहां पर मुनिगण संस्थित हैं तथा स्वयं प्रजापति भी हैं। वे सब आज मेरे शरव्य भूत होंगे, यह निश्चित है। मैं भगवान् विष्णु और योगिराज भगवान् शम्भु भी तुम्हारे अस्त्रों के वशवर्ती होंगे। अन्य साधारण जन्तुओं की तो बात ही क्या है, ऐसा जो कहा था मैं सार्थक करूँ।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–कामदेव ने यह मन से सोचकर और निश्चय करके पुष्पों के धनुष की पुष्पों की ज्या (धनुष की डोरी)

कणों के द्वारा योजित किया था। उस समय में आलीढ़ स्थान को प्राप्त करके तथा अपने धनुष को खींचकर धनुषधारियों में परमनिपुण कामदेव ने यत्नपूर्वक उसे वलय के आकार वाला कर लिया था। हे मुनि श्रेष्ठों! उस कामदेव के द्वारा कोदण्ड (धनुष को) सहित करने पर भली-भाँति आह्लाद के उत्पन्न करने वाली सुगन्धित वायु बहने लगी थी। इसके अनन्तर मोह कर देने वाले कामदेव ने उन घात आदि को और सभी मनुष्यों को पृथक्-पृथक् पुष्पों के शरों से मोहित हो गए थे और मन के द्वारा कुछ विकार को प्राप्त हो गए थे। सभी सन्ध्या को निरीक्षण करते हुए बारम्बार विकारयुक्त मन वाले हो गये थे क्योंकि स्त्री तो मद के वर्द्धन करने वाली होती ही है अतः सब बढ़े हुए मदन वाले अर्थात् अधिक सकाम हो गए थे। फिर उस मदन अर्थात् कामदेव ने पुनः सबको मोहित कराके तथा उन सबको ऐसा कर दिया था कि वे सब इन्द्रियों के विकारों को प्राप्त हो गए थे। जिस समय में उदीरित इन्द्रियों वाले विधाता ने उसको दीक्षा दी थी उसी समय में उनचास भाव शरीर से समुत्पन्न हो गए थे।

हे द्विजो ! विव्वोक आदि हाव-भाव तथा चौंसठ कलायें कन्दर्प (कामदेव) के शिरों से विंधी हुई सन्ध्या के हो गये थे। उन सबके द्वारा देखी गई वह भी कन्दर्प के शरों के पात से समुत्पन्न कटाक्ष आवरण आदि भावों को बारम्बार करने लगी थी। स्वाभाविक रूप से परम सौन्दर्यशालिनी सन्ध्या मदन के द्वारा उद्भूत उन भावों को करती हुई तनु ऊर्भियों के द्वारा स्वर्ग की नदी (गंगा) की भाँति अत्यधिक शोभायमान हो रही थी। इसके अनन्तर भावों में समन्वित उस सन्ध्या को देखते हुई प्रजापति धर्माम्म अर्थात् पसीने से परिपूर्ण शरीर वाले होकर उन्होंने भी अभिलाषा की थी। तात्पर्य यह है उनके शरीर में पसीना आ गया और उनकी भी इच्छा हुई थी। ईश्वर ने कहा-हे ब्राह्मण ! बड़े आश्चर्य की बात है आपको यह कामभाव कैसे उत्पन्न हो गया जो कि अपनी पुत्री को ही देखकर काम के वशीभूत हो गये हैं। यह तो वेदों के अनुसरण करने वालों के लिए योग्य नहीं है।

आपके ही मुख से कहा हुआ वेदों के मार्ग का निश्चय है कि जैसी माता होती है वैसी ही जामि होती है और जैसी जामि होती है वैसी ही सुता हुआ करती है। हे विधे ! हे ब्राह्मण ! हे चतुरानन ! यह समस्त जगत् धर्म में ही है और कैसे इस क्षुद्रकाम के द्वारा यह सब विघटित कर दिया है ?

एकान्त योगी सर्वदा दिव्य दर्शन वाले, किस कारण से और कैसे दक्ष मरीचि आदि मानस पुत्र स्त्रियों में लोलुप हो गये थे ? मन्द आत्मा वाला और अभी कर्म को प्राप्त करने को उद्यत हुआ कामदेव भी कैसा अल्प बुद्धि वाला है और समय को नहीं जानता है कि उसने आप लोगों को ही अपने शरों का लक्ष्य बना डाला है। हे मुनिश्रेष्ठ ! उसके लिए धिक्कार है जिसकी कान्तागण हठपूर्वक धैर्य का आकर्षण करके चंचलताओं में उसके मन को मज्जित कर दिया करती है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—उन गिरीश भगवान् के इस वचन को श्रवण करके लोकों के ईश लज्जा से एक ही क्षण में दुगुने पसीने से भीगे हुए हो गए थे। इसके उपरान्त चतुरानन ब्रह्माजी ने इन्द्रियसम्बन्धी विकार को निगृहीत करके ग्रहण करने की इच्छा समन्वित होते हुए भी उस कामरूप वाली सन्ध्या का परित्याग कर दिया था। हे द्विजश्रेष्ठो ! उसके शरीर से जो पसीना गिरा था उससे अग्निष्वात वर्हिषद पितृगण समुत्पन्न हुए थे। ये सब भिन्न हुए अंजन के सदृश थे और विकसित कमल के समान इनके नेत्र थे। ये अत्यन्त अधिक यति, परमपवित्र तथा संसार से परमाधिक विमुख हुए थे। अग्निष्वात चौसठ सहस्त्र कीर्त्तित किए गए हैं। हे द्विजगणों ! छियासी हजार वर्हिषद बताए गए हैं। दक्ष के शरीर से जो पसीना भूमि पर गिरा था उससे सम्पूर्ण गुणों से सुसम्पन्न वरांगनायें उत्पन्न हुई थीं। वे वरांगनायें तन्वंगी, क्षीण मध्यभाग वाली और परम शुभ शरीर की रोमावली संयुत थीं जिनका अंग अत्यधिक कोमल था तथा परम सुन्दर दर्शन पंक्तियाँ थीं और तपे हुए सुवर्ण के ही तुत्य उनके शरीर की रोमावली संयुत थीं और तपे हुए स्वर्ण के ही तुल्य ही उनके शरीर की कान्ति थी। मरीचि उनमें प्रधान

थे ऐसे छः मुनियों ने अपनी इन्द्रियों की क्रिया को निगृहीत कर लिया था। उस समय क्रतु, वशिष्ठ, पुलस्त्य और अंगिरस के आदि चारों का जो प्रस्वेद भूमि पर गिरा था उससे हे द्विजश्रेष्ठो ! दूसरे पितृगण समुत्पन्न हुए थे। वह सीमय, आज्यय नाम से तथा अन्य सुकाती थी। वे सभी हविर्भुक् थे जो कव्य वाह प्रकीर्त्तित हुए थे। सोमष जो थे वे ऋतु के पुत्र थे, सुकालिन वशिष्ठ मुनि के पुत्र हुए थे। जो आडयप नामक थे, वे पुलस्त्य मुनि के पुत्र थे और हविष्मन्त अंगिरा मुनि के सुत हुए थे।

हे विपेन्द्रों ! उन अग्निष्वातादिक के उत्पन्न हो जाने पर इसके अनन्तर लोकों के पितृ वर्गों में सब ओर कव्यवाह थे। समस्त प्राणियों के ब्रह्माजी ही पितामह हुए थे और सन्ध्या ही पितृ प्रसूता हुई थी क्योंकि सब उसके ही उद्देश्य से हुआ था। इसके अनन्तर भगवान् शंकर के वचन से वह पितामह बहुत लज्जित हुए थे और शीघ्र ही कुंठित किए हुए मुख से संयुत ब्रह्माजी कामदेव के ऊपर अत्यन्त कुपित हो गए थे। वह कामदेव भी पहले ही उनके अभिप्राय का ज्ञान प्राप्त करके उसने पशुपति विधि से डरे हुए ने शीघ्र ही अपने बाण को समेट लिया था। हे द्विजेन्द्रो ! इसके अनन्तर लोगों के पितामह ब्रह्माजी ने अत्यन्त क्रोध में आवष्टि होकर जो कुछ भी किया था उसका आप लोग परम सावधान होकर अब श्रवण कीजिए।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके उपरान्त समस्त जगतों के पति पद्मयोनि ब्रह्माजी अत्यन्त बलवान् दाह करने वाले पावक (अग्नि) के ही समान कोष्ठ में समाविष्ट होकर प्रज्जवलित हो गये थे और उन्होंने ईश्वर से कहा था कि जिस कारण से आपके ही समझ कामदेव ने पुष्पों के बाणों से मुझे सेवित किया है अर्थात् मुझे अपने कुसुम बाणों का लक्ष्य बनाया है अतः हे हर! उसका फल अब आप प्राप्त करिए। यह दर्प से विमोहित कामदेव आपके नेत्रों की अग्नि से निर्दग्ध होगा। हे महादेव ! क्योंकि इसने अत्यन्त दुष्कर कर्म किया था। हे द्विजों में परम श्रेष्ठों ! इस रीति से ब्रह्माजी ने भगवान् व्योमकेश

(शम्भू) के और महात्मा मुनियों के समक्ष में स्वयं ही कामदेव को शाप दिया था। इसके अनन्तर डरे हुए रति के पति कामदेव ने उसी क्षण में अपने बाणों को छोड़ना परित्यक्त कर दिया था और इस परम दारुण शाप का श्रवण करके प्रत्यक्ष ही प्रादुर्भूत अर्थात् प्रकट हो गया था वह कामदेव डर से अति गद्गद् होकर तथ्य वचन कहने लगा था।

कामदेव ने कहा–हे ब्रह्माजी! आपने किसलिए मुझे अत्यन्त दारुण शाप दिया है। मैंने आपका कोई भी अपराध नहीं किया है। हे लोकों के स्वामिन्! आप तो न्याय मार्ग का अनुसरण करने वाले हैं। हे विभो! मैं जो करता हूँ वह सभी आपके ही द्वारा कहा हुआ करता हूँ। यहाँ पर मुझे शाप देना उचित नहीं है क्योंकि मैंने अन्य कुछ करता हूँ। यहाँ पर मुझे शाप देना उचित नहीं है क्योंकि मैंने अन्य कुछ भी कार्य नहीं किया है। आपने स्वयं ही मुझ से कहा था कि मैं तथा भगवान् विष्णु और भगवान् शम्भू ये सभी तेरे शरों के गोचर हैं अर्थात् तेरे बाणों के लक्ष्य होंगे। यह जो कुछ भी आपने ही मुझ से कहा था उसी आपके कथन की परीक्षा मैंने की थी अर्थात् मैंने जाँच की थी कि आपका वचन कहाँ तक सत्य है। हे ब्रह्माजी इसमें मेरा कोई भी अपराध नहीं है। हे जगत् के स्वामिन्! निरपराध मुझको जो यह परम दारुण शाप दे दिया है अब इस शाप का आप शमन कीजिए। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–समस्त जगतों के पति ब्रह्माजी ने उस कामदेव के इस वचन को सुनकर उस हुतात्मा कामदेव से पुनः दया से युक्त होकर यह प्रत्युत्तर दिया था। ब्रह्माजी ने कहा–यह सन्ध्या तो मेरी बेटी है क्योंकि इसके प्रकाश से ही तुमने मुझको अपने बाणों का लक्ष्य बना लिया था। इसी कारण से मैंने तुमको शाप दिया था। इस समय में अब मेरा क्रोध शान्त हो गया है। हे मनोभव अर्थात् कामदेव! अब मैं तुझसे कहता हूँ कि आपको जो मैंने दिया था वह किसी भी तरह से शमन हो जायेगा। तू भगवान् शंकर के तीसरे नेत्र की अग्नि से भस्मीभूत होकर भी फिर उनकी ही कृपा से पुनः अपने शरीर की प्राप्ति कर लेगा। जिस समय भगवान् हर कामदेव अपनी पत्नी का

परिग्रह करेंगे उस समय में वे ही स्वयं तुम्हारे शरीर को प्राप्त करा देंगे।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने कामदेव से इतने ही वचन कहकर मानस पुत्र समस्त मुनीन्द्रों के देखते हुए वे अन्तर्हित हो गए थे। सबके विधाता उन ब्रह्माजी के अन्तर्धान हो जाने पर भगवान शम्भु भी वायु के समान वेग से अपने अभीष्ट देश को चले गए थे। उन ब्रह्माजी के अन्तर्हित हो जाने पर भगवान् शम्भु के भी अपने स्थान पर चले जाने के पश्चात् प्रजापति दक्ष उसकी पत्नी को निदर्शित करते हुए कामदेव से बोले–हे कामदेव! यह मेरे देह से समुत्पन्न हुई मेरे ही रूप और गुणों से समन्वित है यह आपके ही सदृश गुणों से युक्त है सो अब तुम इसको अपनी भार्या बनाने के लिए ग्रहण कर लो। यह महान् तेज से युक्त सर्वदा आपके ही साथ चरण चलने वाली और इच्छानुसार धर्म से वश में वर्त्तन करने वाली होगी।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–दक्ष प्रजापति ने यह कहकर अपनी देह के पसीने से उत्पन्न हुई पुत्री को कामदेव के लिए उसके आगे करके दे दिया था और उसका नाम 'रति' यह कहकर ही प्रदान किया था। कामदेव भी उस परम सुन्दरी रति नाम वाली वराँगना को देखकर उस रति में अत्यधिक अनुरक्त होकर अपने ही बाण के द्वारा विद्ध होकर मोह को प्राप्त हो गया था। क्षणमात्र में होने वाली प्रभा के ही समान वह एकान्त्र गौरी और मृगी के समान लोचनों वाली तथा चंचल उपांगों से समन्वित मृगी की भाँति उसके ही तुल्य परम शोभित हुई थी। उस रति की दोनों भौंहों को देखकर कामदेव ने संशय किया था कि क्या विधाता ने मुझे उन्माद वाला बनाने के लिए यह कोदण्ड (धनुष) निवेषित किया है। हे द्विजोत्तमो ! उस रति के कटाक्षों की शीघ्र गमन करने वाली गति को देखकर अर्थात् शीघ्र ही हृदय को बिद्ध कर देने वाली चाल को देखते हुए उसे अपने अस्त्रों की शीघ्रगामिता और सुरन्दरता पर श्रद्धा नहीं रह गयी थी। तात्पर्य यही है कि उसके (रति के) कटाक्षों की गति के सामने अपने बाणों की गति कामदेव को तुच्छ प्रतीत होने लग गयी थी। उस रति की स्वाभाविक रूप से सुगन्धित

धीर श्वासों की वायु का आघ्राण करके कामदेव ने मलय पर्वत की गन्ध को लाने वाली वायु में श्रद्धा का त्याग कर दिया था। कथन का अभिप्राय यह है कि मलय मारुत भी उसके श्वासानिल के समाने हेय प्रतीत हो रही थी। पूर्णचन्द्र के समान भौंहों के चिह्न से लक्षित उसके मुख को देखकर कामदेव ने उसके मुख और चन्द्र में किसी प्रकार के भेद का निश्चय नहीं किया था। उस रति के दोनों स्तनों का जोड़ा सुनहरी कमल की कलिका के जोड़े के ही समान था। उन स्तनों के ऊपर जो कृष्ण वर्ण से युक्त चूचक थे (काली घुंडियाँ) वे ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानों कमल की कलिकाओं पर भ्रमर बैठे हुए रसपान कर रहे हों।

अत्यन्त दृढ़ (कठोर) पीन (स्थूल) और उन्नत स्तनों के मध्य भाग से नीचे की ओर जाती हुई नाभि पर्यन्त रहने वाली, तन्वी सुन्दर, आयत और शुभ रसों की पंक्ति को कामदेव ने भ्रमरों की पंक्ति से संम्भृत (सयुत) पुष्प धनुष की ज्या (डोरी) को भी विस्मृत कर दिया था क्योंकि उसका ग्रहण करके इसको ही देखता है। पुनः उसके ही सुन्दर स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उसकी गम्भीर नाभि के रन्ध्र (छिद्र) के अन्दर चारों ओर त्वचा से वह आवृत थी। उसके मुख कमल पर जो दो नेत्रों को जोड़ा था वह ऐसी प्रतीत होता था मानों थोड़ी लालिमा से युक्त कमल हो। हे द्विज श्रेष्ठों ! जिसका मध्य भाग क्षीण था ऐसे शरीर से वह रति निसर्ग अष्टपद की प्रभा वाली थी। उसको कामदेव ने रत्नों द्वारा विरचित वेदी के ही समान देखा था। उसके उरुओं का युगल अत्यन्त कोमल और कदली के स्तम्भ के समान आयत एवं स्निग्ध (चिकना) था। कामदेव ने उसको अपनी शक्ति के ही तुल्य मनोहर देखा था। थोड़ी रक्तिमा से युक्त पार्ष्णि पादाग्र प्रान्त भाग से संयुक्त दोनों पदों के जोड़े को कामदेव ने उसमें स्थित अनुराग से परिपूर्ण चित्र देखा था। उस रति के दोनों हाथों को जो ढाक के पुष्पों के समान लाल नाखूनों से युक्त थे और परम सूक्ष्म सुवृत्त अंगुलियों को परम मनोहर देखा था।

हे द्विज सत्तमो ! यह देखकर कामदेव ने यह मान लिया था कि मेरे अस्त्रों से द्विगुणित हुए अस्त्रों के द्वारा क्या यह मुझको मोहित करने के लिए उद्यत हो रही है ? उसकी दोनों बाहुओं का जोड़ा मृणाल के जोड़े के समान अधिक सुन्दर था। वह अत्यन्त कान्ति संयुत जल के प्रवाह के समान मृदु और स्निग्ध शोभित हो रहा था। उसका केशों का पाश अत्यधिक मनोहर नील वर्ण वाले मेघ के सदृश था और कामदेव का प्रिय वह चमरी गौ के पूँछ के बालों के भार के समान प्रतीत होता है। उस अत्यधिक मनोहर रति देवी का काम अवलोकन करके विकसित लोचनों वाला हो गया था। उसी रति की विशेष स्वरूप शोभा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह रति देवी उपकी कान्ति रूपी जल ओघ (समूह) से सम्पूर्ण थी, वह अपने कुचों के मुख कमल की कालिका वाली थी, पद्म के सदृश मुख से समन्वित थी, सुन्दर बाहुरूपी मृगालीश (चन्द्र) की कला से संयुत थी, यह रति देवी दोनों भौंहों के युग्म के विभ्रमों के समूह से तनूर्मियों से परिराजित थी, वह कटाक्ष पातरूपी भ्रमरों को समुदाय वाली थी, वह नेत्ररूपी नील कमलों से समन्वित थी, वह शरीर की रोमावलि के शैवाल से युक्त थी, वह मनरूपी द्रुमों के विशातन करने वाली थी, वह रति गम्भीर नाभिरूपी ह्रद से युक्त थी, वह दक्षरूपी हिमालय गिरि से सुमुत्पन्न हुई गंगा की भाँति महादेव की तरह उत्फुल्ल लोचन थी। उस समय में मोद के भार से युत आनन वाले कामदेव ने विधाता के द्वारा दिए हुए सुदारुण शाप को भूलकर प्रजापति दक्ष से कहा था।

कामदेव ने कहा—हे विभो ! भली-भाँति परमाधिक स्वरूप लावण्य से समन्वित इस सहचारणी के द्वारा मैं भगवान् शम्भु को मोहित करने की क्रिया में समर्थ हो सकूँगा फिर अन्य जन्तुओं से क्या प्रयोजन है। हे अनघ अर्थात् पिष्पाप ! जहाँ-जहाँ पर मेरे द्वारा धनुष का लक्ष्य किया जाता है वहीं-वहीं पर इसके द्वारा भी रमण नामक माया से चेष्टा की जायेगी। जिस समय में मैं देवों के आलय अर्थात् स्वर्ग में जाता हूँ अथवा पृथ्वी या रसातल में गमन किया करता हूँ उसी समय

में यह भी सर्वदा चारुहास वाली हो जाया करेगी। जिस प्रकार लक्ष्मी साथ गमन करने वाली होती है और मेघों के साथ विद्युत रहा करती है उसी भाँति मेरी प्रजाध्यक्ष सहायिनी होगी। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–कामदेव ने इस रीति से यह कहकर रति देवी को बहुत ही उत्सुकता के सहित होकर ग्रहण किया था जिस प्रकार से सागर से समुत्थित उत्तमा लक्ष्मी को भगवान् हृषीकेश ने ग्रहण कर लिया था। भिन्न पीतप्रभा वाला कामदेव उस रति के साथ शोभित हुआ था जिस प्रकार से सन्ध्या के समय में मनोहर सौदामिनी के साथ मेघ की शोभा हुआ करती है। इस रीति से बहुत ही अधिक मोद से युक्त रति के पति कामदेव ने उस रति को अपने हृदय में विद्या को योगदर्शी के ही समान परिग्रहण किया था। रति ने भी परम श्रेष्ठ पति को प्राप्त करके परमाधिक सन्तोष को प्राप्त किया था अर्थात् अत्यन्त सन्तुष्ट हो गई थी। जैसे कमल से समुत्पन्ना पूर्ण चन्द्र के समान मुख वाली लक्ष्मी भगवान् हरि को प्राप्त करके सन्तुष्ट हो गयी थी।

वसन्त आगमन वर्णन

महर्षि मार्कण्डेय ने कहा–तभी से लेकर ब्रह्माजी भी समय-समय में ही परिपीडित होकर चिन्तन किया करते थे कि भगवान् शम्भु ने मेरी केवल कान्ता के प्रति अभिलाषा को ही देखकर मुझे बुरा कह दिया था वही शम्भु अब मुनिगणों के ही समक्ष में दाराओं को किस तरह से ग्रहण करेंगे अथवा कौन सी नारी उन शम्भु की पत्नी होगी और कौन सी नारी है जो उनके मन में स्थान बनाकर अवस्थित हो रही है, जो योग के मार्ग से भ्रष्ट करके उनको मोहित करेगी। उनका मोह न करने में कामदेव भी समर्थ नहीं हो सकेगा। वे तो नितान्त योगी हैं, वे वीरांगनाओं के नाम को भी सहन नहीं किया करते हैं। मध्य और अन्त में सृष्टि होती है उनका वध अन्य कारित नहीं है अर्थात् अन्य किसी के भी द्वारा नहीं किया जा सकता है। इस भूमण्डल में कोई ऐसे होंगे जो महान् बलवान् मेरे द्वारा बाध्य होंवे। कुछ भगवान् विष्णु के

वारणीय हैं और उपाय से कुछ शम्भु के हैं। उस सांसारिक भोगों के सुखों से विमुख तथा एकांत विरागी भगवान् शम्भु के विषय में इससे अन्य कोई भी कर्म नहीं करेगा, इसमें संशय नहीं है।

लोकों के पितामह लोकेश ब्रह्माजी यही चिन्तन् करते हुए ने आकाश में स्थित होते हुए उन्होंने भूमि में स्थित दक्ष आदि को देखा था। रति के साथ मोह से समन्वित कामदेव को देखकर ब्रह्माजी फिर वहाँ पर गए और कामदेव को सन्त्वना देते हुए उससे बोले—हे मनोभव अर्थात् कामदेव ! आप इस अपनी सहचारिणी पत्नी रति के साथ में शोभायमान हो रहे हैं और यह भी आपके साथ संयुक्त होकर अत्यधिक शोभित हो रही है। जिस रीति से लक्ष्मी देवी से भगवान् होती है। जैसे चन्द्रमा से रात्रि और निशा से चन्द्र शोभायमान होता है ठीक उसी भाँति आप दोनों की शोभा होती है और आपका दाम्पत्य पुरस्कृत होता है। अतएव आप जगत् के केतु हैं और विश्वकेतु हो जायेंगे। हे वत्स ! अब तुम इस समस्त जगत् के हित सम्पादित करने के लिए पिनाकधारी भगवान् शम्भु को मोहित कर दो जिससे सुख के मन वाले भगवान् शम्भु द्वारा का परिग्रह कर लेवें। किसी भी विजन देश में, स्निग्ध प्रदेश में, पर्वतों पर और सरिताओं में जहाँ-जहाँ पर ईश गमन करें वहाँ-वहाँ पर ही इसके साथ उनको मोहयुक्त कर दो।

इस वनिता से विमुख भगवान् हर को जो कि पूर्णतया संयत आत्मा वाले हैं मोहित कर दो। तुम्हारे बिना अर्थात् वाला त्रिभुवन में नहीं है। हे मनोभव ! भगवान् हर के सानुराग हो जाने पर अर्थात् दाम्पत्य जीवन के सुखभोगों के अभिलाषी होने पर आपके शाप की भी उपशान्ति हो जायेगी। इस कारण आप इस समय अपना ही हित करो। हे कामदेव ! अनुराग से युक्त होकर जब शम्भु वरारोह की इच्छा करें तो उस अवसर पर तुम्हारे उपभोग के लिए ये तुमको सम्भावित अवश्य ही करेंगे। इसलिए जगत् की भलाई करने के लिए तुम भगवान् हर के मोहन करने के कर्म में पूर्ण यत्न करो। महेश्वर को मोहित करके आप शिव के केतु हो जाओ। ब्रह्माजी के इस वचन का

श्रवण करके कामदेव ने ब्रह्माजी से जगत् का हितकारी जो तथ्य था वह कहा था। कामदेव ने कहा—हे विभो ! मैं आपकी आज्ञा से अवश्य ही शम्भु का मोहन करूंगा किन्तु हे प्रभो ! पोषित रूपी महान् अस्त्र जो हैं उस कान्ता को मेरे लिए आप सृजित कर दीजिए। मेरे द्वारा शम्भु के सम्मोहित करने पर जिसके द्वारा उसका अनुमोहन करना चाहिए, हे लोकभृत् ! उस परम रमणीय रामा का आप निदेशन कीजिए। उस प्रकार की रामा को मैं नहीं देख रहा हूँ जिसके द्वारा उनका अनुमोहन होवे। अब हे धाता ! कर्तव्य यही है कि अब कुछ उसी तरह का उपाय करें।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—कामदेव के इस प्रकार से कहने पर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने यही चिन्ता की थी कि मुझे ऐसी सम्मोहनी पोषा (नारी) उत्पन्न करनी चाहिए। इस चिन्ता में समाविष्ट उन ब्रह्माजी को जो इसके अनन्तर निःश्वास विनिःसृत हुआ था उसी से बसन्त ने जन्म धारण किया था जो कि पुष्पों के समुदाय से विभूषित था। भ्रमरों की संहति (समूह) को धारण करने वाले मुकुलित आम्र के अंकुरों को सरस किंशुकों (ढाक के पुष्प) को साथ लिए हुए प्रफुल्लित पादप (वृक्ष) की भाँति शोभित हुआ था। उसी बसन्त की स्वरूप शोभा का वर्णन करते हुए कहा जाता है कि वह रक्त कमल के सदृश था तथा विकसित ताम्ररस के समान उसके नेत्र थे, सन्ध्या की बेला में उदीयमान अखण्ड चन्द्रमा के समान उसका मुख था और उसकी पर सुन्दर नासिका थी। शंख के सदृश श्रवणों के आवर्त्त वाला था तथा श्याम वर्ण के कुञ्चित (घुंघराले) केशों से शोभित था, सन्ध्या के समय में अंशुमाली के तुल्य दोनों कुण्डलों से विभूषित था। उसकी गति मदमस्त हाथी के समान थी और उसका वक्षःस्थल विस्तीर्ण था तथा पानी स्थूल और आयत भुजाओं से संयुत था एवं उसके दोनों करों का जोड़ा अतीव कठोर था।

उसके उरु, कटि और जंघायें सुवृत्त अर्थात् सुडौल थे, उसकी ग्रीवा कम्बु के तुल्य थी एवं उसकी नासिका उन्नत थी, वह गूढ़ शत्रुओं वाला, स्थूल वक्षःस्थल से युक्त था। इस रीति से समस्त लक्षणों से

वह सर्वाङ्ग सम्पूर्ण था। उसके अनन्तर उस प्रकार के सम्पूर्ण कुसुमाकर (बसन्त) के समुत्पन्न हो जाने पर सुगन्ध से संयुत वायु वहन करने लगी और सभी वृक्ष पुष्पित हो गये थे। कोयलें मधुर स्वरों से समन्वित होती हुई सैकड़ों बार पञ्चम स्वर में बोलने लगी थीं, विकसित कमलों वाली सरोवरें पुष्करों से युक्त हो गयी थीं। इसके अनन्तर हिरण्यगर्भ अर्थात् ब्रह्माजी उस प्रकार के अतीव उत्तम उसको समुत्पन्न हुआ देखकर कामदेव से मधुर वचन बोले–हे कामदेव! यह आपका मित्र उत्पन्न होकर समुपस्थित है जो कि सर्वदा ही अनुकूलता का व्यवहार करेगा। जिस रीति से अग्नि का मित्र वायु है जो उसका सभी जगह पर उपकार किया करता है उसी भाँति यह आपका मित्र है जो सदा ही आपका ही अनुगमन करेगा। वसति के अन्त का हेतु होने से ही यह बसन्त नाम वाला होवेगा। इसका कर्म यही है कि सदा आपका अनुगमन करे तथा लोकों का अनुरञ्जन किया करे।

यह बसन्त शृंगार है और बसन्त में मलयानिल वहन किया करता है। आपके वश में ही कीर्तन करने वाले भाव सदा सुहृद होवें। विव्वोक आदि हाथ तथा चौंसठ कलायें जिस प्रकार से आपके सुहृद हैं वैसे ही रति देवी के भी सौहार्द भाव को करेंगे। हे कामदेव! अब आप इन सहचरों के साथ जिनमें बसन्त प्रधान है और तुम्हारे ही उपयुक्त परिवार स्वरूपा इस सहचारिणी रति के साथ मिलकर अब महादेव को मोहित करो और सनातनी सृष्टि की रचना कर डालो। इन समस्त सहचरों के साथ जो भी इष्ट हो उसी देश में चले जाओ मैं उसको भावित करूँगा जो हरि को मोहित कर देगी। इस रीति से सुरों में सबसे बड़े ब्रह्माजी के द्वारा कहे गऐ वचनों से कामदेव परम हर्षित होकर अपने गणों के सहित तथा पत्नी और अनुचरों के साथ उस समय में वहाँ पर चला गया था। प्रजापति दक्ष को साथ समस्त मानस पुत्रों को अभिवादन करके उस समय कामदेव वहीं पर चला गया था जहाँ हर भगवान् शम्भु हैं। उस अनुचरों के सहित कामदेव के चले जाने पर जो कि शृंगार भाव आदि से संयुत था, हे द्विजोत्तमो! पितामह ने दक्ष प्रजापति से मरीचि, अत्री प्रमुख मुनीश्वरों के साथ में कहा था।

काली स्तुति वर्णन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा– इसके अनन्तर उस समय ब्रह्माजी ने महान् आत्मा वाले दक्ष के लिए और मरीचि प्रमुख मुनियों से यह वचन कहा था। ब्रह्माजी ने कहा–भगवान् शम्भु की पत्नी होने वाली कौन है जो उनको मोहित कर देगी ? इसी का ध्यान करते हुए उन्होंने शिव की कान्ता के विषय में मन स्थिर करने का उत्साह नहीं किया था। हे दक्ष ! जगन्मयी, महामाया, विष्णु की माया के बिना तथा सन्ध्या, सावित्री और उमा के अतिरिक्त अन्य कोई भी उनका सम्मोहन कर देनेवाली नहीं है। इसी कारण मैं इस जगत् को प्रसूत करने वाली भगवान् विष्णु की माया योगनिद्रा का स्तवन करता हूँ क्योंकि वही अपने सुन्दरतम स्वरूप से भगवान् शंकर को मोहित करेगी। हे दक्ष! आप तो उसी विश्व के स्वरूप वाली का यजन करो जिसके करने से वह आपकी पुत्री होकर भगवान् की पत्नी होगी। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इस प्रकार के ब्रह्माजी के वचन का श्रवण करके मरीचि आदि के द्वारा पूजित दक्ष ने सृजन करने वाले ब्रह्माजी से कहा था। दक्ष प्रजापति ने कहा–हे लोकों के ईश! हे भगवान् ! जो परमतथ्या और जगत् का हित करने को अपने कहा है वह मैं भली-भाँति करूँगा जिससे उसके मन को हरण करने वाली समुत्पन्न हो जावे। मैं ठीक उसी भाँति का हो जाऊँगा जिस प्रकार से मेरी पुत्री स्वयं ही महात्मा शम्भु की पत्नी होकर विष्णु की माया हो जावे।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–उस वेला में मरीचि जिनमें प्रमुख थे उन सभी ऋषियों ने इसी प्रकार होवे यही कहा था। फिर प्रजापति दक्ष ने जगत् से परिपूर्ण महामाया का अभ्यंजन करना आरम्भ कर दिया था। क्षीरोद के उत्तर में नीर में स्थित होकर उस देवी को अपने हृदय में विराजमान करके अर्थात् उसका अपने मन में पूर्णतया ध्यान करके प्रत्यक्ष रूप से अम्बिका के अवलोकन करने के लिए तपस्या का समाचरण करने के लिए आरम्भ कर दिया था। नियत होकर संयत आत्मा वाले और सुदृढ़ व्रत से संयुत होते हुए तप किया था। उस तप

करने के समय में आरम्भ में केवल वायु का आहार, फिर बिना आहार किए हुए और जल का ही केवल आहार तथा पत्तों को आहार करने वाला वह दक्ष रहा था। दक्ष के तप करने के लिए चले जाने पर समस्त जगत् के पति ब्रह्माजी परम पवित्र से भी पवित्रतम परम श्रेष्ठ मन्दराचल के समीप चले गए थे। वहाँ पहुँचकर जगत के धात्री जगत्मयी विष्णु के माया का वचनों के द्वारा और अर्घ्यों से एक मन होकर सौ वर्ष तक स्तवन किया था।

ब्रह्माजी ने कहा—विद्या और अविद्या के स्वरूप वाली, शुद्धा, बिना अवलम्ब वाली, निराकुला जगत् की धात्री और स्थूल और अवर्णनीय स्वरूप से समन्विता देवी का स्तवन करता हूँ। जिससे यह जगत् उदित होता है जो प्रधान नामक है और जगत् से परे है। जिससे उसी के अंशभूता सनातनी निद्रा आप हैं ऐसा आपका मैं स्तवन करता हूँ। आप परमानन्द स्वरूपा चिति हैं, आप परमात्मा के स्वरूप वाली हैं, आप समस्त प्राणियों की शक्ति हैं और आप सबको पाचन करने वाली हैं। आप सावित्री हैं, आप इस जगत् की धात्री हैं, आप ही सन्ध्या, रति और धृति हैं और आप ही ज्योति के स्वरूप के द्वारा इस संसार में प्रकाश करने वाली हैं। यथा आप अपने तम के स्वरूप से सदा ही इस जगत् को आच्छादन करती हुई स्थित रहा करती हैं। आप ही सृष्टि के सृजन स्वरूप से इस संसार को परिपूर्ण करने वाली हैं। आप मेधा हैं, आप महामाया हैं, आप पितृगणों को मोह देने वाली स्वधा हैं, आप स्वाहा हैं तथा समस्कार और वषट्कार एवं स्मृति हैं।

आप पुष्टि तथा धृति, मैत्री करुणा तथा मुदिता हैं। आप ही लज्जा, शान्ति, कान्ति और जगत् की ईश्वरी हैं। आप महामाया स्वाहा और पितृ देवता स्वधा हैं। जो हमारी सृष्टि की शक्ति हैं और जो हरि की स्थिति की शक्ति हैं, हे सनातनी ! आप ही शक्ति हैं। आप एक ही दश प्रकार की होकर मोक्ष और संहार के करने वाली हैं। विद्या और अविद्या के स्वरूप से आप स्वप्रकाशा और अप्रकाश हैं। आप ही समस्त प्राणधारियों की लक्ष्मी हैं, आप ही छाया और सरस्वती हैं।

आप त्रयीमयी अर्थात् वेदों से परिपूर्ण हैं तथा आप त्रिमाता हैं, आप सब भूतों के स्वरूप वाली हैं। जो पितृगणों के रञ्जन करने से सामवेद की उद्गीति है वह आप ही हैं। सब यज्ञों की देवी आप हैं तथा आप सामिधेनी और हवि हैं। जो परमात्मा को अव्यक्त, अनिर्देश्य, निष्कल रूप हैं तथा तन्मात्र, सफल और जगन्मय हैं, वह आप ही हैं। जो मूर्ति विततता सर्वधारित्री और क्षिति का धारण करती हुई है। हे विश्वाम्भरे ! लोक में सदा शक्ति और भूति को प्रदान करने वाली आप ही हैं। आप लक्ष्मी-चेतना, कान्ति और सनातनी पुष्टि हैं। आप कालरात्रि हैं, आप मुक्ति हैं, आप शान्ति-प्रज्ञा और स्मृति हैं। हे सुख और मोक्ष के प्रदान करने वाली ! आप इस संसाररूपी महान् सागर से पार करने के लिए तारणी अर्थात् नौका स्वरूप हैं। आप प्रसन्न होइए ! आप समस्त जगतों की गति एवं मति हैं जो सदा ही रहा करती हैं। आप नित्या हैं और आप चराचर को मोहित करने वाली अनित्या भी हैं। आप सब योगों के साङ्गोपांग विभावन करने वाली सन्धिनी हैं। आप यतियों की चिन्ता और कीर्ति हैं और आप ही उनके आठ अंगों से समन्वित हैं। आप सगिंनी, शूलिनी, चक्रिणी और घोर रूप वाली हैं। आप समस्त जनों की ईश्वरी हैं, आप सब पर अनुग्रह करने वाली हैं। आप इस विश्व की आदि हैं, आप अनादि हैं अर्थात् आप ऐसी हैं जिसका कोई आदि है ही नहीं। आप इस विश्व की योनि हैं अर्थात् विश्व के उत्पन्न करने वाली हैं और आप स्वयं अयोनिजा हैं अर्थात् आपके समुत्पन्न करने वाला कोई नहीं है। आप अनन्ता हैं अर्थात् ऐसी हैं जिनका कोई अन्त ही नहीं है। आप सब जगतों की एकान्तकारिणी हैं अर्थात् समाप्त जगतों की रचना करने वाली हैं। आप नितान्त निर्मला हैं और आपको तामसी कहकर गाया जाता है। आप हिंसा और अहिंसा हैं तथा आप चार मुखों से संयुत काली हैं।

आप सबसे परा जननी हैं तथा आप दामिनी हैं। आप ही में यह विश्व लय होता है। आप तत्व स्वरूपा हैं तथा सबको विभरण किया करती हैं। आप सृष्टि से हीन हैं, आप सृष्टि हैं। आप कण रहित होती

हुई भी श्रुति सम्पना हैं। आप तपस्विनी हैं तथा कर चरणों से रहित हैं, आप महान् हैं। आप द्यौ हैं, आप चल हैं, आप ही ज्योति तथा वायु हैं। आप नभ, मन और अहंकार भी हैं। आप जगतों की आठ प्रकार की प्रकृति तथा कृति हैं। आप जगत् की नाभि और परा मेरुरूप धारिणी हैं। आप परानिकट हैं। आप परायणात्मिका अर्थात् पर और अपर स्वरूप वाली हैं। आप शुद्धा-माया और अति मोह के करने वाले हैं। आप कारण और कार्यभूत हैं। हे शिवाशिवे ! आप सत्य और शान्त हैं। आपके रूप विश्व के अर्थ में राग, वृक्ष और फल हैं। आप नितान्त छोटी और दीर्घ हैं। आपका स्वरूप नितान्त अणु और वृहत् हैं। आप सूक्ष्मा होती हुई भी सम्पूर्ण लोक में व्याप्त रहने वाली हैं, आप जगत् से परिपूर्ण हैं। आप मात्र से हीन, विमाना, अति विमाना और उन्मान और समुद्भूता हैं। आप ऐसी हैं जो अष्टि-व्यष्टि, सम्भोग और राग आदि से गलित आशय वाली रहती हैं। वह आपकी महिमा में आपको जो भ्रान्ति आदिक है वह आपका ही स्वरूप है।

आप इष्ट और अनिष्ट के विपाक के ज्ञान रखने वाली हैं और यथेष्ट तथा अनिष्ट का कारण हैं। आप सर्गादि, मध्य तथा अन्त से परिपूर्ण हैं और उसी भाँति आपका रूप है। आठ अंगों वाले योग से बारम्बार इस प्रकार से सम्पादन करके जो तत्व स्थित किया जाता है वह ही आपका सनातन रूप है। बाह्य और अबाह्य में सुख तथा दुःख, ज्ञान और अज्ञान, लय और अलय, उपताप और शान्ति आप ही जगत् की स्वामिनी हैं। जिसके प्रभाव को तीनों लोकों में कोई भी कहने की शक्ति नहीं रखता है अर्थात् किसी के द्वारा भी प्रभाव नहीं कहा जा सकता है वह आप उनका भी सम्मोहन करने वाली हैं। ऐसा आपको मेरे द्वारा क्या स्तवन किया जा सकता है। आप योगनिद्रा, महानिद्रा, मोहनिद्रा, जगन्मयी, विष्ठमाया और प्रकृति हैं ऐसी आपको कौन स्तुति के द्वारा विभाजित करें जो मेरे विष्णु भगवान् और शंकर भगवान् के वपु के वहन करने की स्वरूप वाली हैं। उसके प्रभाव का कथन करने को और गुणगण का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है

अर्थात् कोई भी ऐसी क्षमता नहीं रखता है। प्रकाशकारण, ज्योति स्वरूप के अन्तर में गोचर होने वाली आप ही जंगम में स्थेयरूपा एक वाह्य गोचर हैं। समस्त जगतों की जननी स्त्रीरूप वाली आप प्रसन्न होइए। हे विश्व रुपिणी! हे विश्वेशे! हे सनातनि! आप मुझ पर प्रसन्न हो जाइए।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–विरञ्चि (ब्रह्मा) के द्वारा इस प्रकार से स्तवन की हुई वह योगनिद्रा परमात्मा ब्रह्मा के सामने आविर्भूत (प्रकट) हो गयी थी। उस प्रकट हुई देवी योगनिद्रा का स्वरूप का अब वर्णन किया जाता है। वह स्निग्ध अञ्जन की कान्ति के समान द्युति वाली थी, उसका स्वरूप परम सुन्दर था, वह उन्नत थीं और उनकी चार भुजायें थीं। वह सिंह के ऊपर सवार थीं, उनके हाथों में खड्ग और नीलकमल था, उसके केश पाश खुले हुए थे। सृष्टि के सृजन करने वाले जगत् गुरु ब्रह्माजी ने अपने समक्ष समुपस्थित उस देवी का अवलोकन करके उन्होंने अपने उन्नत कन्धों को विनम्र करके बड़े ही भक्ति के भाव से उन देवी को स्तवन किया और प्रणिपात किया था। ब्रह्माजी ने कहा–हे जगत् की प्रवृत्ति और निवृत्ति के रूप वाली! हे स्थिति और सर्ग (रचना) के स्वरूप से समन्विते! आपके चरणारविन्दों में मेरा बारम्बार नमस्कार है। चर और अचरों की आप शक्ति हैं, शाप सनातनी और सबका विमोहन करने वाली हैं। जो श्री सदा ही भगवान् शंकर की मूर्ति की माया है, जो विश्वम्भरा हैं और सबका विभरण किया करती हैं, जो ह्रीं, योगिनी, महिता औ मनोज्ञा हैं वह आप ऐसी हैं। हे परमात्मसारे ! आपको मेरा नमस्कार है। हे यामादि पूर्वे ! जिसका योगीजन अपने हृदय में प्रमिति के द्वारा प्रती का विभावन किया करते हैं वह आप प्रकाश शुद्ध, आदि से संयुता हैं, वह आप राग रहिता हैं। आप निश्चित रूप से विविध (अनेक) अवलम्बों वाली विद्या हैं।

आप कूटस्थ, अव्यक्त, अचिन्त्य रूप कालमय को धारण करने वाली हैं अर्थात् मरण करती हुई हैं। तात्पर्य यह है जगतों को विभरण करने वाली हैं। आप नित्य विकार बीज को करती हैं जो प्रयत्न है,

न्यून है और मध्य है। सत्व, रज और तमोगुण इनके विकारों से आप हीन हैं और जो साम्बस्थिति रूपा हैं। वह आप गुणों की हेतु हैं, बाहर और अन्तराल में भवती की भाँति गमन किया करती हैं। हे अशेष जगतों की पीजे! हे ज्ञेय (जानने के योग्य) और ज्ञान के स्वरूप वाली! हे जगतों की विष्णु माये! जगत् की हित स्वरूपा आपके लिए नमस्कार है। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–उनके इस वचन को सुनकर लोकों के विमोहन करने वाली काली ने मेघ की गर्जना के समान अर्थात् गम्भीर ध्वनि से जगतों के सृजन करने वाले ब्रह्माजी से बोली। देवी ने पूछा–हे ब्राह्मण! आपने किस प्रयोजन का सम्पादन करने के लिए मेरी स्तुति की है। इसका अवधारण करो और बतलाओ जो भी मनोभाव होवे, यह मेरे सामने शीघ्र ही कहो। मेरे प्रत्यक्ष हो जाने पर कार्य की सिद्धि निश्चिय ही होती है। इस कारण से आप अपना जो मनोऽभिलाषित हो उसे शीघ्र ही कहो जिसको मैं भावित कर दूँगी।

ब्रह्माजी ने कहा–भूतों के ईश भगवान् शम्भु एक ही अर्थात् अकेले ही विचरण किया करते हैं और दूसरी की इच्छा ही नहीं रखते हैं। आप उनको मोहित कर दो और वह स्वयं ही दारा ग्रहण कर लेवें। आपके बिना अर्थात् आपको छोड़कर उनके मन को हरण करने वाली कोई भी नहीं होगी। इस कारण से आप ही एक स्वरूप से भगवान् शम्भु का मोहन करने वाली हो जाओ। जिस प्रकार से आप लक्ष्मी के स्वरूप से शरीर धारण करने वाली होकर भगवान् केशव को अमोदित किया करती हैं। विश्व के हित सम्पादन करने के लिए उसी भाँति इनको करिए। वृषभध्वज शम्भु मेरी कान्ता की अभिलाषा मात्र को ही बुरा कहते थे अतः किस-किस रीति से वे वनिता को अपनी ही इच्छा से ग्रहण करेंगे। कान्ता के ग्रहण न करने वाले हर के होने पर यह सृष्टि कैसे प्रवृत्त होगी? आदि, अन्त और मध्य के हेतु स्वरूप उन शम्भु के विरागी होने पर यह कैसे हो सकेगा? इस चिन्ता में गमन मैं हूँ, आपसे अन्य मेरा यहाँ पर रक्षक कोई नहीं हैं। अतएव विश्व की भलाई के लिए आप यह करिए जो कि मेरा ही कार्य है। इनके मोह

करने के लिए न तो विष्णु समर्थ हैं और न लक्ष्मी तथा न कामदेव ही समर्थ हैं। हे जगत की माता ! मैं भी उनको मोहित करने की क्षमता नहीं रखता हूँ। इस कारण से आप ही महेश्वर को मोहित करिए। जिस प्रकार से भगवान् विष्णु की एक प्रिया हैं वैसे ही आप महेश्वर की होवें। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इसके अनन्तर ब्रह्माजी से उस योगमयी ने फिर जो कहा था हे द्विजोत्तमो! उसका श्रवण करिए।

योगनिद्रा स्तुति

देवी ने कहा–हे ब्रह्माजी! आपने जो भी कहा था वह सम्पूर्ण सत्य ही है। मेरे बिना यहाँ पर शंकर को मोहित करने वाली कोई अन्य नहीं हैं। भगवान् हर के द्वारा न ग्रहण करने पर यह सनातनी सृष्टि नहीं होगी, यह तो आपने सर्वथा सत्य प्रतिपादन किया है। मेरे द्वारा भी इस जगत् के पति का महान् यत्न है। आपके वाक्य से आज दुगुना सुनिर्भर प्रयत्न हुआ था। मैं उस प्रकार से यत्न करूँगी कि भगवान् हर विवश होकर स्वयं ही विमोहित होकर दारा का परिग्रहण करेंगे। परम सुन्दर मूर्ति बनकर मैं उसी की वशवर्तिनी हो जाऊँगी। हे महाभाग ! जिस तरह से भगवान् विष्णु की वशवर्तिनी हरि प्रिया रहा करती हैं। उसी तरह से वह भी यहां पर मेरे ही साथ वशवर्ती हो जावें और मैं उसी तरह से करूँगी और हर को अपना वशवर्ती बना लूँगी जैसे अन्य साधारण जन को कर लिया जाता है। प्रतिसर्ग के आदि, मध्य उन निरंकुश शम्भु को, हे विज्ञ! विशेष रूप से स्त्री रूप से उनके समीप मैं जाऊँगी।

हे पितामह! दक्ष प्रजापति की स्त्री से बहुत ही सुन्दर स्वरूप से उत्पन्न हुई प्रतिसर्ग समाहित होऊँगी। इसके अनन्तर देवगण जगत्मयी विष्णुमाया मुझको रुद्राणी, शंकरी इस नाम से कहेंगे। उत्पन्न मात्र से ही निरन्तर जिस प्रकार से प्राणी को मोहित करूँ ठीक उसी भाँति से प्रमथों के स्वामी भगवान् शंकर को सम्मोहित कर लूँगी। भूमण्डल में जैसे अन्य साधारण जन वनिता के वश में हो जाया करता है उससे भी

अधिक भगवान् शम्भु मेरे वश में वर्त्तन करने वाले हो जायेंगे। विभेदन करके अपने हृदय के अन्तर में लीन और भुवनाधीन जिस विद्या को महादेव मोह से प्रतिग्रहण कर लेंगे। इसके उपरान्त मार्कण्डेय मुनि ने कहा–हे द्विजसत्तमो! इस प्रकार से ब्रह्माजी से कहकर जगत् के स्त्राष्टा के द्वारा वीक्ष्यमाण होती हुई वह देवी फिर वहीं पर अन्तर्धान हो गई थीं। इसके अन्तर्धान होने पर लोकों के पितामह धाता वहाँ पर गये थे जहाँ पर भगवान् कामदेव संस्थित थे।

हे मुनिश्रेष्ठों! ब्रह्माजी महामाया के वचनों का स्मरण करते हुए अत्यधिक प्रसन्न हुए थे और वे आपने आपको कृतकृत्य अर्थात् सफल मानने लगे थे। इसके अनन्तर कामदेव ने महात्मा ब्रह्मा को हंस के यान के द्वारा गमन करते हुए देखकर शीघ्रता से समन्वित होकर उसके लिए अभ्युत्थान किया था। उसके उपरान्त उन ब्रह्माजी को अपने समीप में आये हुए देखकर परमहर्ष से विकसित लोचनों वाले कामदेव ने मोद से युक्त समस्त लोकों के स्वामी ब्रह्माजी की अभिवादन किया था। इसके अनन्तर भगवान् ब्रह्माजी ने प्रीति से मधुर और गद्गद् वचनों से कामदेव को हर्षित करते हुए जो विष्णु माया देवी ने कहा था वही कहा था। ब्रह्माजी ने कहा–हे वत्स! जो आपने पहले सबके मोहन करने के विषय में वचन कहा था कि आप अनुमोहन करने वाली जो भी हो उसका सृजन करो। हे कामदेव! उसी कार्य को सम्पादित करने के लिए मैंने जगन्मयी योगनिद्रा देवी का मन्दराचल की कन्दरा में एकमात्र मन के द्वारा स्तवन किया था। हे वत्स! वह स्वयं ही मेरे सामने प्रत्यक्ष हुई थी और अत्यन्त प्रसन्न होकर उसने यह स्वीकार कर लिया था कि मेरे द्वारा शम्भु का मोहन किया जायेगा। हे कामदेव! दक्ष प्रजापति के भवन में समुत्पन्न हुई उसके द्वारा शम्भुमोहन का कर्म किया ही जायेगा, यह सर्वथा सत्य है।

कामदेव ने कहा–हे ब्रह्माजी! जो कि जगन्मयी है वह कौन है जो योगनिद्रा इस नाम से विख्यात हुई है। जो शंकर सदा ही तप में संस्थित रहा करते हैं वे उनके द्वारा कैसे वश्य होंगे? उस देवी का क्या प्रभाव

हे, वह देवी कौन सी है और वहाँ किस स्थान में स्थित रहा करती है ? हे लोक पितामह ! यह सभी कुछ मैं आपके मुखकमल से श्रवण करने की इच्छा करता हूँ। जो अपनी समाधि का त्याग करके एक क्षणमात्र भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ करते हैं उनके समक्ष हम भी स्थित नहीं हो सकते हैं वह फिर उनको कैसे मोहित करेगा ? हे ब्रह्माजी! उनके नेत्र जलती हुई अग्नि के प्रकाश के समान हैं तथा वे जटा-जूट के समुदाय से विकराल स्वरूप वाले हैं। ऐसे त्रिशूलधारी शिव को देखकर उनके सामने कौन सी क्षमता है जो कि स्थित हो सके। उस शम्भु का इस प्रकार का स्वरूप है। उनको मोहित करने की इच्छा से मैंने भी स्वीकार किया था। अब मैं उस देवी के विषय में तात्विक रूप से श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—उसके उपरान्त ब्रह्माजी ने कामदेव के वचन को सुनकर बोलने की इच्छा वाला होकर भी अनुत्साह के कारणस्वरूप उसके वाक्य को श्रवण कर भगवान् शंकर के मोहन करने में चिन्ता से समाविष्ट होते हुए कि मैं शंकर को मोहित करने में समर्थ नहीं हूँ, इस रीति से उन ब्रह्माजी ने बार-बार निःश्वास लिया था अर्थात् चिन्ता से श्वास छोड़ा था। उनकी निःश्वास की वायु से अनेक रूपों वाले महाबलवान् चंचल जिह्वा वाले अति भयंकर और अत्यन्त चंचल गण समुत्पन्न हो गए थे। उन गणों में कुछ तो घोड़े के समान मुख वाले थे तथा कुछ हाथी के मुख जैसे मुखों वाले थे। अन्य सिंह तथा बाघ के मुख के समान मुखों वाले थे। कुछ गण रीछ और मार्जार के जैसे मुखों से संयुत थे तो कोई-कोई शरभ तथा शुक के मुखों वाले थे। कुछ प्लव और गौ मुख के सदृश मुख वाले थे तथा कोई सरीसृप के मुख के समान मुखों से समन्वित थे, कुछ उन गणों में गौर रूप थे तो कुछ गाय के समान मुखों से संयुत थे। कोई-कोई पक्षी के सदृश मुखों से संयुत थे। कुछ बहुत विशाल तो कुछ बहुत ही छोटी शरीर वाले थे। कोई-कोई महान् स्थूल थे तो कुछ बहुत ही कृश थे। उन गणों के अनेकानेक स्वरूप बताये जा रहे हैं—कुछ पीली आँख वाले,

कुछ विडाल के तुल्य नेत्रों वाले तो कुछ त्र्यक्षैकाक्ष थे और कोई-कोई महान् उदर से युक्त थे। कुछ एक कान वाले, कुछ तीनों कानों वाले तथा दूसरे चार कानों से युक्त थे। स्थूल कानों वाले, महान् कानों वाले, बहुत कानों वाले और कुछ तीन कानों वाले थे। उनमें कुछ बड़ी आँखों वाले तो कुछ स्थूल नेत्रों से संयुत थे। कुछ सूक्ष्म लोचनों वाले और कुछ तीन दृष्टियों से समन्वित थे।

उन गणों में कोई चार पैरों वाले, कुछ पाँच पैरों से युक्त, कोई तीन चरणों वाले तो कुछ एक ही पद वाले थे। कुछ के बहुत छोटे पैर थे, कुछ लम्बे पैरों वाले थे, कुछ के पैर बहुत स्थूल थे तो कुछ महान् पदों से संयुत थे। कोई-कोई एक हाथ वाले, कुछ चार हाथों से युक्त, कोई दो हाथों वाले तो कोई तीन करों वाले थे। कुछ के हाथ थे ही नहीं तो विरुपाक्ष थे तथा कुछ गोधिका की आकृतियों वाले थे। उनमें कुछ मानवीय आकृति से युक्त थे, कोई-कोई शुशुमार के मुख के समान मुखों वाले थे। कोई क्रौञ्च के आकार वाले, तो कुछ बगुला के आकार वाले एवं कुछ हंस और सारस के रूप वाले थे। कुछ मुद्गुकुरर, कक और काक के तुल्य मुखों वाले थे। अब उन गणों के वर्ण बताये जाते हैं—उनमें कुछ आधे नीले, आधे लाल, कपिल तथा कुछ पिंगल वर्ण वाले थे। कुछ नील, शुक्ल, पीत, हरित और चित्रवर्ण वाले थे। वे गण शंखों को, घण्टों को बजा रहे थे तथा कुछ परिवादी थे। कुद मृदंग, डिमडिम, गोमुख तथा पणवों के बजाने वाले थे। वे सभी गण पीली और उन्नत जटाओं से संयुत अत्यधिक कराल थे। हे द्विजेन्द्रों ! वे सभी गण स्यन्दन (रथ) के द्वारा गमन करने वाले थे। उनमें कुछ हाथों में शूल लिए हुए थे तो कुछ पाश, खंग और धनुष करों में ग्रहण किए हुए थे। कुछ शक्ति, अंकुश, गदा, बाण, पट्टिश तथा पाश अपने करों के लिए हुए थे।

उन गणों के पास अनेक प्रकार के आयुध थे और महाबलवान् वे बड़ा भारी शोर करने वाले थे। वे मार डालो, छेद डालो ऐसा कहने वाले थे और ब्रह्माजी के सामने उपस्थित हो गए थे। इसके अनन्तर

ब्रह्माजी से कहकर कामदेव ने उन गणों को अवलोकन करके गणों के आगे स्थित होते हुए कारण कहते हुए बोलना आरम्भ किया था। कामदेव ने कहा—हे ब्रह्माजी! ये आपका क्या कर्म करेंगे अथवा कहाँ पर संस्थित होंगे अथवा रहेंगे? इनके क्या-क्या नाम हैं? वहीं पर इनका आप विनियोजन कीजिए। अपने कार्य में इनका नियोजन करके इनको स्थान देकर इनका नाम रखिए। यह सब कुछ करके इसके पश्चात् महामाया का जो भी कुछ प्रभाव हो उसे मुझे बतलाइए। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके उपरान्त समस्त लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने उस कामदेव के वचन को सुनकर उनके कार्य आदि के विषय में आदेश देते हुए कामदेव के सहित उन गणों से कहा।

ब्रह्माजी ने कहा—ये सब उत्पन्न होने के साथ ही निरन्तर 'मार डालो' यह बहुत बार बोले थे। बारम्बार इनसे यही वचन कहे गये थे। अतएव इनका नाम 'मार' यह होवे। मारात्मक होने से ये नाम से भी मार ही होवें। बिना अर्चना के ये सदा ही जन्तुओं के लिए विघ्न ही किया करेंगे। हे कामदेव! इन गणों का प्रधान कर्म तुम्हारा ही अनुगमन करना होगा। जिस-जिस समय जब-जब भी आप अपने कार्य के सम्पादन करने के लिए जायेंगे वहीं-वहीं पर भी उसी-उसी समय में तुम्हारी सहायता के लिए ये गण जाने वाले होंगे। तुम्हारे अस्त्र के वशवर्त्ती ज्ञानियों के चित्त को उद्भ्रान्ति करेंगे और सर्वदा ज्ञान के मार्ग में विघ्न उत्पन्न करेंगे। जिस प्रकार से सब जन्तुगण सांसारिक कर्म किया करते हैं ठीक उसी भाँति ये सब भी विघ्नों को भी करेंगे। ये सभी जगह पर कामरूप वाले और वेग से समन्वित स्थित होंगे। आप ही इन सबके गणाध्यक्ष हैं। ये पंचयज्ञों के अंशभोगी और नित्य क्रिया वालों के तोय भोगी होवें।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—वे सब यह श्रवण करके ब्रह्माजी के सहित कामदेव को परिवारित करके इच्छानुसार अपनी गति को सुनकर समवस्थित हो गये थे। हे मुनि सत्तमों! उनके विषय में क्या वर्णन किया जा सकता है, उनके महात्म्य और प्रभाव का क्या वर्णन किया

जावे क्योंकि वे सब तपशाली थे। उनके न तो जाया थी और न कोई सन्तान ही थी। वे तो सदा ही समीहार से रहित थे। वे न्यासी होते हुए थी महान् आत्माओं वाले थे और से सभी ऊर्ध्वरिता पुरुष थे। इसके अनन्तर वे ब्रह्माजी परम प्रसन्न होते हुए योगनिद्रा का माहात्म्य कामदेव को कहने के लिए भली-भाँति से उपक्रम करने वाले हुए थे। ब्रह्माजी ने कहा-रजोगुण, सत्वगुण और तमोगुणों के द्वारा जो अव्यक्त और व्यक्त रूप से सविभाजन करके अर्थ को किया करती है वही विष्णुमाया इस नाम से ही कही जाया करती है। जो निम्न स्थान वाले जल में स्थित होती हुई जगदण्ड कपाल से विभाजन करके पुरुष के समीप गमन किया करती है वह योगनिद्रा इस नाम से पुकारी जाया करती है।

मन्त्रों के अन्तर्भावन में परायण और परमाधिक आनन्द के स्वरूप वाली जो योगियों की सत्वविद्या का अन्त है वही जगन्मयी इस नाम से कहने के योग्य होती है। गर्भ के अन्दर रहने वाले को ज्ञान से सम्पन्न (तात्पर्य यह है कि जब तक यह यह जीवात्मा माता के गर्भ के रहता है तब तक अपने आपको पूर्ण ज्ञान रहा करता है) और प्रसव की वायु से प्रेरित होता हुआ जब यह जन्म धारण कर लेता है तो वही सभी ज्ञान को भूलकर ज्ञान रहित हो जाया करता है ऐसा जो निरन्तर ही किया करती है। पूर्व से भी पूर्व का सन्धान करने के लिए संस्कार से नियोजन करके आहार आदि में फिर मोह, ममत्वभाव और ज्ञान में संशय को करती है तथा क्रोध, उपरोध और लोभ में बार-बार क्षिप्त कर-करके पीछे काम में नियोजित करके आहार आदि में फिर मोह, ममत्वभाव और ज्ञान में संशय को करती है तथा क्रोध, उपरोध और लोभ में बार-बार क्षिप्त कर-करके पीछे काम में नियोजित शीघ्र ही चिन्ता से युक्त करती है, जो चिन्ता रात दिन रहा करती है, जो इस जन्तु को आमोद से युक्त और व्यसनों में आसक्त किया करती है, वही महामाया इस नाम से कही गई है, इसी से वह जगत् की स्वामिनी हैं। अहंकार आदि से संसक्त सृष्टि के प्रभाव को करने वाली उत्पत्ति से

यही लोकों के द्वारा वह अनन्त स्वरूप वाली कही जाया करती है। बीज से समुत्पन्न हुए अंकुर को मेघों से समुद्भुत जल जिस प्रकार से प्ररोहित किया करता है ठीक उसी भाँति वह भी जन्तुओं को जो उत्पन्न हो गये हैं उनको प्ररोहित किया करती है। वह शक्ति सृष्टि के स्वरूप वाली हैं और सबकी ईश्वरी ख्याति है। वह जो क्षमाधारी हैं उनकी क्षमा है तथा जो दया वाले हैं उनकी (करुणा) दया है। वह नित्यस्वरूप से नित्या हैं और इस जगत् के गर्भ में प्रकाशित हुआ करती हैं। वह ज्योति के स्वरूप से व्यक्त और अव्यक्त का प्रकाश करने वाली परा है। वह योगाभ्यासियों की मुक्ति का हेतु हैं और विद्या के रूप वाली वैष्णवी है। लक्ष्मी के रूप से वह भगवान् कृष्ण की द्वितीया अर्द्धांगिनी परममनोहरा है। हे कामदेव! त्रयी अर्थात् वेदत्रयी के रूप से सदा मेरे कंठ में संस्थिता है। वह सभी जगह पर स्थित रहने वाली और सब जगह गमन करने वाली है। वह दिव्यमूर्ति से समन्विता हैं। नित्या देवी सबके स्वरूप वाली और परा–इस नाम वाली है। वह कृष्ण आदि का सर्वदा सम्मोहन कहने वाली है और स्त्री के स्वरूप से सभी ओर सभी जन्तुओं को मोहन करने वाली हैं।

मदन वाक्य वर्णन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने महामाया के स्वरूप का प्रतिपादन करके महादेव से फिर कहा था कि वह भगवान् शंकर के सम्मोहन करने में युक्ता हैं। ब्रह्माजी ने कहा–विष्णुमाया ने पहले ही यह स्वीकार कर लिया है जैसे महादेव दारा का परिग्रहण करेंगे। वह ऐसा करना अंगीकार कर चुकी हैं। हे कामदेव! उन्होंने स्वयं ही ऐसा कहा था कि वह अवश्य ही प्रजापति दक्ष की पुत्री के रूप में जन्म धारण करके महात्मा शम्भु की द्वितीया अर्थात् पत्नी रति और अपने सखा बसन्त के साथ मिलकर वैसा ही कर्म करो जिससे भगवान् शम्भु दारा को ग्रहण करने की इच्छा कर लेवें। भगवान् शंकर के द्वारा दारा के ग्रहण किए जाने पर हम कृत-कृत्य अर्थात् सफल हो

जायेंगे और फिर यह सृष्टि अविच्छिन्न अर्थात् बीच में न टूटने वाली हो जायेगी। श्री मार्कण्डेय मुनि ने कहा--हे द्विजश्रेष्ठो! कामदेव ने लोकों के ईश ब्रह्माजी से उसी भाँति मधुरतापूर्वक कहा जो भी कुछ महादेवजी को मोहित करने के लिए उसने किया था।

कामदेव ने कहा--हे ब्रह्माजी ! आप अब श्रवण कीजिए जो भी कुछ हमारे द्वारा महादेव जी के मोहन करने में किया जा रहा है उनके परोक्ष में अथवा प्रत्यक्ष में जो भी किया जा रहा है उसे बतलाते हुए मुझसे आप श्रवण कीजिए। इन्द्रियों को जीत लेने वाले भगवान् शम्भु ज्यों ही जिस समय समाधि का समाश्रय ग्रहण करके स्थित हुए थे उसी समय विशुद्ध वेग वाले अर्थात् सुमन्द और सुगन्धित तथा शीतल वायु के द्वारा हे लोकेश ! जो कि नित्य ही मोहन के करने वाली हैं उनसे उन शम्भु को विजित करूँगा कि अपने शरासन का ग्रहण करके अपने बाणों का मैं उनके गणों को मोहित करते हुए उनके समीप में भ्रमित करूँगा। मैं वहाँ पर सिद्धों के द्वन्द्वों को अहर्निश रमण कराता हूँ और निश्चय ही हाव और भाव सब प्रवेश किया करते हैं। हे पितामह ! यदि शम्भु के समीप में प्रविष्ट होने पर कौन सा प्राणी बारम्बार वहाँ पर भाव को नहीं किया करता है। मेरे केवल प्रवेश के होने ही से सभी जीव-जन्तु उस प्रकार का गमन करते हैं तो उसी समय में मैं वहीं पर हे ब्रह्माजी ! अपनी पत्नी रति और मित्र वसन्त के साथ चला जाऊँगा। यदि यह मेरु पर चले जाते हैं अथवा जिस समय तारकेश्वर में पहुँच जाते हैं या कैलाश गिरि पर गमन करते हैं तो उस समय में मैं भी वहीं पर चला जाऊँगा।

जिस अवसर पर भगवान् हर अपनी समाधि का परित्याग करके एक क्षण को भी स्थित होते हैं तो फिर मैं उनके ही आगे चक्रवाक के दम्पत्ति को योजित कर दूँगा। हे ब्रह्माजी! वह चक्रवाक का जोड़ा बार-बार हाव-भाव से संयुत अनेक प्रकार के भाव से उत्तम दाम्पत्य के क्रम को करेगा। उनके आगे फिर जाया के सहित नीलकण्ठों को भी समीप ही में हैं सम्मोहित करूंगा और समीप ही मृगों तथा अन्य

पक्षियों को भी मोहयुक्त कर डालूँगा। यह सब जिस समय में एक अति अद्‌भुत भाव को देखकर कौन-सा प्राणी है जो उस समय में उत्सुकता से रहित बना रहे अर्थात् कोई भी चेतना ऐसा नहीं है जिसे उत्सुकता न हो और उनके ही आगे मृग अपनी प्रणयिनियों के साथ उत्सुकता वाले हो जाते हैं! और उनके पार्श्व में तथा समीप में अतीव रुचिर भाव कहते हैं तो मेरा शर कदाचित् भी इसके विवर को नहीं देखता है। जिस मय में वह देह से गिराया जाता है जो कि मेरे ही द्वारा फेंका जाया करता है। आप तो सभी लोकों के धारण करने वाले हैं अर्थात् यह सभी कुछ का ज्ञान रखते हैं। प्रायः यह निश्चित ही ज्ञात होना चाहिए कि रामा के संग के बिना हर का मैं सहसाय भी निष्फल सम्मोहित करने के लिए समर्थ एवं पर्याप्त हूँ और यह सफल ही है।

मेरा मित्र मधु अर्थात् बसन्त तो जो-जो भी उसके विमोहन की क्रिया करने में कर्म होंगे वह किया ही करता है। हे महाभाग! जो नित्य ही उसके लिए उचित है उसका पुनः आप श्रवण कीजिए। जहाँ पर भी भगवान् शंकर स्थित होकर रहेंगे वहीं पर मेरा मित्र वह वसन्त चम्पकों, केशरों, आम्रों, वरुणों, पाटलों, नाग, केसर, मुन्नागों, किंशुकों, धनों, माधवी, मल्लिका, पर्णधारों, कुवरकों इन सबको वह विकसित कर दिया करता है। समस्त सरोवर ऐसे कर देता है कि उसमें कमल पूर्ण विकसित हो जाया करते हैं और वह मलय की ओर से आवाहन करने वाली परमाधिक सुगन्धित वायु में वीक्षन करते हुए यत्नपूर्वक भगवान् शंकर के आश्रम को सुगन्धित कर दे। समस्त वृक्षों का समुदाय विकसित हो जायेगा। वे लतायें परम रुचिर भाव से दाम्पत्य को प्रकट करती हुई वहाँ पदमेक्षों को विष्टित करेंगे अर्थात् वृक्षों से लिपट जायेंगे। पुष्पों वाले उन वृक्षों को उन सुगन्धित समीरणों से संयुत देखकर वहाँ पर मुनि भी कामकला के वश में हो जाया करते हैं जो अपनी इन्द्रियों का दमन किए हुए हैं। हे लोकों के स्वामिन् अनेक परम शोभन भावों के द्वारा अनेक गण, सुर और सिद्ध तथा परम तपस्वी गण भी जो-जो दमनशील हैं वे सभी वश में आ जाया करते हैं।

उनके आगे हमने मोह का कोई भी कारण नहीं देखा है। भगवान् शंकर तो काम से उत्थित भाव को भी नहीं किया करते हैं। यह सभी कुछ मैंने देखकर और भगवान् शंकर की भावना का ज्ञान प्राप्त करके मैं तो शम्भु को मोहित करने की क्रिया से विमुख हो गया हूँ। यह नियत ही है कि बिना माया के यह कार्य कभी भी नहीं हो सकता है। इतना तो मैं सब कुछ कर चुका हूँ किन्तु शम्भु के मोहन के कार्य में मैं विफल ही रहा हूँ किन्तु पुनः आपके वचनादेश को श्रवण करके जो योगनिद्रा के द्वारा उदित है। उस योगनिद्रा का प्रभाव सुनकर तथा गणों सहित देखकर मेरे द्वारा शंकर के विमोहन करने के लिए फिर एक बार उद्यम किया जाता है। कृपा करके हे त्रिलोकेश! योगनिद्रा को पुनः शीघ्र ही जिस प्रकार से शम्भु की जाया (पत्नी) हो जावें वैसा ही कीजिए। शम्भु के यम-नियम और नित्य ही होने वाले प्राणायाम तथा महेश के आसन और गोचर में प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि में विघ्नों को सम्भव होना मैं तो यह मानता हूँ कि मैं तो क्या मुझ जैसे सैकड़ों के द्वारा भी नहीं किया जा सकता है। तो भी यह कामदेव के गण भगवान् शंकर के यम नियमादि उपर्युक्त अंगों के विकाररूपी विघ्न करे।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने भी पुनः कामदेव से यह वचन कहा था। हे तपोधने! ब्रह्माजी ने योगनिद्रा के वाक्य का स्मरण करके और निश्चय करके ही यह कहा था। ब्रह्माजी ने कहा—यह योगनिद्रा अवश्य ही भगवान् शम्भु की पत्नी होगी। जितनी भी आपकी शक्ति है उसी के अनुसार आप भी इन योगनिद्र की सहायता करिए। आप अब अपने गणों के साथ ही वहीं पर चले जाइए जहां पर भगवान् शंकर समवस्थित हैं। हे कामदेव! आप भी अपने सखा वसन्त के साथ वहाँ पर शीघ्र ही गमन करिए जिस स्थान पर शम्भु विराजमान हैं और अहर्निश के चतुर्थ भाग में नित्य ही जगत् का मोहन करो और शेष तीन भाग में गणों के साथ सदा भगवान् शम्भु के समीप संस्थित रहो। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इतना कहकर लोकों

के स्वामी ब्रह्माजी वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे और कामदेव अपने गणों के सहित उसी समय में भगवान् शम्भु के समीप चला गया था। इसी बीच में प्रजापति दक्ष चिरकाल तक तपस्या में रत होता हुआ बहुत प्रकार के नियमों से सुन्दर व्रतधारी होकर देवी की समाराधना में निरत हो गया था। हे मुनि सत्तमों! फिर नियमों से युक्त और योगनिद्रा देवी का यजन करने वाले दक्ष प्रजापति के समक्ष में चण्डिका देवी प्रत्यक्ष हुई थी। इसके अनन्तर प्रजापति दक्ष प्रत्यक्ष रूप से जगन्मयी विष्णुमाया का दर्शन प्राप्त करके अपने आपको कृतकृत्य अर्थात् पूर्णतया सफल मानने लगा था।

अब भगवती के रूप का वर्णन किया जाता है कि वह देवी बालिका परम स्निग्ध, कृष्ण वर्ण के संयुत, पीन (स्थूल) और उन्नत स्तनों वाली थी। उसकी चार भुजायें थीं तथा परमाधिक सुन्दर उसका मुख था और नीलकमल को धारण करने वाली परमशुभ थी। वरदान तथा अभयदान देने वाली, हाथ में खंग धारण करती हुई सभी गुणों से समन्विता थी। उसके नयन थोड़ी रक्तिमा लिए हुए थे और सुन्दर और खुले हुए केशों वाली थीं एवं परम मनोहर थीं। प्रजापति दक्ष ने उनका दर्शन प्राप्त करके परम प्रीति से युक्त होकर विनम्रता से उस देवी की स्तुति की थी। दक्ष ने कहा–आनन्द के स्वरूप वाली और सम्पूर्ण जगत् को आनन्द करने वाली, सृष्टि पालन और संहार के स्वरूप से संयुत, परमशुभा भगवान् हरि की लक्ष्मी देवी का मैं स्तवन करता हूँ। हे महेश्वरि! सत्व गुण के उद्वेग के प्रकाश से जो उत्तम ज्योति का तत्व है जो स्वप्रकाश जगत् का धाम है, वह आपका ही अंश है। रजोगुण की अधिकता से जो काम का प्रकाशन है वह हे जगन्मयी! मध्य स्थित राग के स्वरूप वाला वह आपके ही अंश का अंश है।

तमोगुण के अतिरेक जो मोह का प्रकाशन है जो कि चेतनों का आच्छादन करने वाला है वह भी आपके अंशांश को गोचर है। आप परा हैं और परास्वरूप वाली हैं, आप परमशुद्ध हैं, निर्मला हैं और लोकों को मोह करने वाली हैं। आप तीन रूपों वाली, त्रयी (वेदत्रयी),

कीर्ति, वार्ता और इस जगत् की गति हैं। जिस निजोत्थ मूर्ति के द्वारा माधव धात्री का विभरण करते हैं वह आपकी ही मूर्ति है, जो समस्त जगतों के उपकार करने वाली है। आप महान् अनुभव वाली सूक्ष्मा और अपराजिता विश्व की शक्ति हैं जो ऊर्ध्व और अधो के विरोध के द्वारा पवनों से पर का व्यक्तिकरण किया जाता है वह ज्योति आपके मात्रार्थ के भावसम्मत सात्विक जिसका योगीजन बिना आलम्ब वाणी, निष्कल, परम निर्मल आलम्बन किया करते हैं वह तत्व आपके ही अनन्तर गोचर है। जो प्रसिद्धा, कूटस्था, अति प्रसिद्ध और निर्मला है। वह ज्ञाप्ति आपकी निष्प्रपञ्चना और प्रपचामी प्रकाशिका है आप विद्या हैं और आप अविद्या हैं आप आलम्बा हैं और बिना आश्रय वाली हैं। आप प्रपंच रूप से संयुत जगतों की आदिशक्ति हैं और आप ईश्वरी हैं।

जो ब्रह्माजी के कण्ठ के आलय वाली और शुद्ध वाग्वाणी पायी जाती है वह वेदों के प्रकाशन में परायण तथा विश्व को प्रकाशित करने वाली आप ही हैं। आप अग्नि हैं तथा स्वाहा विश्व को प्रकाशित करने वाली आप ही हैं। आप अग्नि हैं तथा स्वाहा हैं। आप पितृगणों के साथ स्वधा हैं। आप नभ हैं और आप कालरूपा हैं। आप दिशायें हैं और आप आकाश स्थिता हैं। आप चिन्तन करने के अयोग्या हैं, आप अव्यक्त हैं तथा आप आपका रूप अनिर्देश्य है। आप ही कालरात्रि हैं और आप ही परमशान्त परा प्रकृति हैं। जिसका संसार और लोकों में परित्राण के लिए जो रूप गह्वर है वह आपको जानते हैं अन्यथा परा आपको कौन जानेंगे। हे भगवती ! आप प्रसन्न होइए, हे अग्ने! हे योगरूपिणि! आप प्रसन्न होइए। हे घोररूपे! आप प्रसन्न होइए। हे जगन्मयि ! आपके लिए मेरा नमस्कार है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस रीति से प्रयत आत्मा वाले दक्ष के द्वारा स्तुति की गई महामाया दक्ष से बोली, यद्यपि उस दक्ष के अभीष्ट को स्वयं जानती हुई भी थी तथापि देवी ने उससे पूछा था।

भगवती ने कहा—हे दक्ष! आपके द्वारा अत्यधिक की गई इस मेरी

भक्ति से मैं आपसे परम प्रसन्न हूँ। अब तुम वरदान का वरण कर लो जो भी आपका अभीप्सित हो वह मैं स्वयं ही तुझे दे दूंगी। हे प्रजापते ! आपके नियम से, तपों से और आपकी स्तुतियों से मैं बहुत अधिक प्रसन्न हो गयी हूँ। आप वरदान का वरण करो मैं उसी वर को दे दूँगी। दक्ष ने कहा–हे जगन्मयि! हे महामाये! यदि आप मुझे वरदान देने वाली हैं तो आप ही स्वयं मेरी पुत्री होकर भगवान् शंकर की पत्नी बन जाइए। हे देवि! यह वर केवल मेरा ही नहीं है अपितु समस्त जगती का है। हे प्रजेश्वरि! यह वर लोकों के ईश ब्रह्माजी का है तथा भगवान् विष्णु का है और भगवान् शिव का भी है। देवी ने कहा–हे प्रजापते! मैं आपकी पुत्री होकर आपकी जाया (पत्नी) में जन्म धारण करने वाली होऊँगी तथा भगवान् शंकर की पत्नी हो जाऊँगी और इसमें विलम्ब नहीं होगा। जिस समय से आप फिर मेरे विषय में मन्द आदर वाले हो जाओगे तब मैं सुखिनी भी अथवा तुरन्त ही अपने देह का त्याग कर दूँगी। हे प्रजापते! यह वर प्रतिसर्ग में आपको दे दिया है कि मैं आपकी सुता होकर भगवान् हर की प्रिया होऊँगा। हे प्रजापते! मैं महादेव को उस प्रकार से सम्मोहित करूँगी कि वे प्रतिसर्ग में निराकुल मोह को समाप्त करेंगे।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इस प्रकार से प्रजापति दक्ष से महामाया ने कहा और इसके उपरान्त वह देवी भली-भाँति दक्ष के देखते-देखते ही वहीं पर अन्तर्हित हो गई थीं। उस महामाया के अन्तर्धान हो जाने पर प्रजापति दक्ष की अपने आश्रम को चले गए और उन्होंने परमआनन्द प्राप्त किया था कि महामाया उनकी पुत्री होकर जन्म धारण करेगी। इसके अनन्तर बिना ही स्त्री के संगम के उन्होंने प्रजा का उत्पादन किया था। संकल्प, अविर्भावों के द्वारा तथा मन से और चिन्तन के द्वारा ही प्रजोत्पादन किया था। हे द्विज श्रेष्ठों! वहाँ पर उनके बहुत से पुत्र समुत्पन्न हुए और वे सब देवर्षि नारदजी के उपदेश से इस पृथ्वी पर भ्रमण किया करते हैं। उनके बार-बार जो पुत्र उत्पन्न हुए थे वे सभी अपने भाइयों के ही मार्ग पर नारद जी के वचन से चले

गये थे। हे द्विजोत्तमों! आप लोग सभी पृथ्वी मण्डल में सृष्टि के करने वाले हैं। यही देवर्षि नारद का वाक्य था जिसके द्वारा दक्ष के पुत्र प्रेरित किए गए थे। वे आज तक भी इस पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए वहीं वापिस हुए हैं।

इसके अनन्तर मैथुन से समुत्पन्न होने वाली प्रजा का सम्पादन करने के लिए प्रजापति दक्ष ने वीरण की पुत्री के साथ विवाह किया था जो कि परम सुन्दर कन्या थी। हे द्विजसत्तमो! उसका नाम वीरणी था और अस्किनी यह भी था। उसमें सब प्रजापति का प्रथम संकल्प हुआ। हे द्विजोत्तमो! उस समय में उसमें सद्योजाता महामाया हुई। उसके जन्म होते ही प्रजापति अत्यन्त प्रसन्न हुआ था। उसको तेज से उज्जवला देखकर उस समय में उसने (दक्ष) यह वही है, ऐसा मान लिया था। जिस समय में वह समुत्पन्न हुई थी, पुष्पों की वर्षा आकाश से हुई थी और मेघों ने जल वृष्टि की थी। उस अवसर पर सभी दिशाऐं उसके जन्म धारण करने पर परम शान्त समुद्गत हो गयी थीं। आकाश में गमन करके देवगणों ने परमशुभ वाद्यों को बजाया था। हे नरोत्तमो! उस सती के समुत्पन्न होने पर शान्त अग्नियाँ भी प्रज्ज्वलित हो गयी थीं। वीरणी के द्वारा लक्षित दक्ष प्रजापति ने उस जगदीश्वरी का दर्शन प्राप्त करके महामाया को परमार्थिक भक्ति की भावना से तोषित किया था।

शिव, शांता, महामाया, योगनिद्रा, जगन्मयी

दक्ष प्रजापति ने कहा था–शिवा, शान्ता, महामाया, योगनिद्रा, जगन्मयी जो विष्णुमाया कही जाती हैं उस सनातनी देवी के लिए मैं नमस्कार करता हूँ। जिसके द्वारा धाता (ब्रह्मा) इस जगत् की सृष्टि की स्थिति का सृजन करने के कार्य में नियुक्त किया था और पहले इस सृष्टि की रचना उसने की थी और भगवान् विष्णु ने उस सृष्टि की स्थिति अर्थात् हरिपालन किया था। जिसके वियोग से जगत् के पति शम्भु ने अन्त अर्थात् सृष्टि का संहार किया था। उसी देवी आपको, मैं प्रणाम करता हूँ। आप विकारों से रहित हैं, शुद्ध हैं, अप्रमेया अर्थात्

प्रमाण करने के योग्य हैं, प्रभा वाली हैं, आप प्रमाण मानमेय नाम वाली और सुख स्वरूपिणी हैं ऐसी आपको मैं करता हूँ। जो पुरुष, देवी आपका चिन्तन करें जो कि आप विद्या-अविद्या के स्वरूप वाली परा हैं उस पुरुष के सुखों का भोग्य और मुक्ति सदा ही करतल में स्थित रहा करती है। जो पुरुष आप देवी की प्रत्यक्ष रूप से परमपावनी का एक बार भी दर्शन प्राप्त कर लेता है उस पुरुष की अवश्य ही मुक्ति हो जाया करती है जो कि विद्या, अविद्या की प्रकाशिका है। हे योगनिद्रे! हे महामाये! हे जगन्मयी! हे विष्णुमाये! जो प्रमाणार्थ सम्पन्न चेतना है वह तेरे ही स्वरूप वाली है। हे जगन्मात! जो पुरुष आपका अम्बिका कहकर स्तवन किया करता है, जो जगन्मयी और मया इन नामों का उच्चारण करके आपकी स्तुति किया करते हैं उनका सभी कुछ अभीष्ट सम्पन्न हो जाया करता है।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–महान् आत्मा वाले दक्ष के द्वारा इस रीति से स्तुति की गयी। जगन्माता उस अवसर पर उसी भाँति दक्ष प्रजापति से बोली जैसे माता सुनती ही नहीं हो। वहाँ पर स्थित सबको सम्मोहित करके जिस तरह से दक्ष वह सुनता है उस प्रकार अन्य माया से नहीं श्रवण करता है उस समय में अम्बिका ने कहा। हे मुनिसत्तम! जिसके लिए पूर्व भी मेरी आराधना की थी वह आपका अभिष्ट कार्य सिद्ध हो गया है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इस प्रकार से कहकर उस समय में देवी ने अपनी माया से दक्ष को समझाया था और फिर वह शैशव भाव में समास्थित होकर जननी के समीप रोदन करने लगी थी। इसके अनन्तर वीरणी ने बड़े ही यत्न से यथोचित रूप से सुसंस्कार करके शिशु के पालन की विधि से उनको स्तन दिया था अर्थात् शगुन का दुग्ध पिलाया था। इसके अनन्तर वीरणी के द्वारा पालित की गयी थी तथा महात्मा दक्ष के द्वारा शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा जिस तरह से प्रतिदिन वृद्धि वाला हुआ करता है उसी भाँति वह बड़ी हो गयी थी। हे द्विज श्रेष्ठों! उस देवी में सब सद्गुणों ने प्रवेश कर लिया था जिस तरह से चन्द्रमा में शैशव में भी समस्त मनोहर कलायें प्रवेश किया करती हैं।

वह निज भाव से जिस समय में सखियों के मध्य गमन करके रमण करती थी। वह जिस समय में गीतों का गान करती है जो कि बचपन के लिए समुचित थे उस समय से स्मरमानसा वह उग्रस्थाणु, हर और रुद्र इन नामों का स्मरण किया करती थी। हे द्विज सत्तमों! दक्ष प्रजापति ने उस बालिका स्वरूप में स्थित देवी का 'सती' यह नाम रखा था। जो कि समस्त गुणों के द्वारा सत्व से भी और तप से भी परम प्रशस्ता थी। दक्ष और वीरणी दोनों की प्रतिदिन अनुपम करुणा बढ़ रही थी। उन दोनों दक्ष और वीरणी की करुणा की वृद्धि का कारण यही था कि वह सती बचपन में ही परमभक्ता थी अतएव उन दोनों की बारम्बार नित्य करुणा की वृद्धि हो रही थी। हे नरोत्तमों! वह समस्त परमसुन्दर गुणों से समाक्रान्त थी और सदा ही नवशालिनी थी अतएव उसने (सती ने) अपने माता-पिता को परमाधिक सन्तोष दिया था अर्थात् वे अतीव सन्तुष्ट थे। इसके अनन्तर एक बार ऐसी घटना घटित हुई थी कि उस सती को अपने पिता दक्ष के पार्श्व में समय स्थित हुई को ब्रह्मा, नारद इन दोनों ने देखा था जो कि इस भूमण्डल में परम शुभा और रत्न भूता थी।

वह सती भी उन दोनों का दर्शन प्राप्त करके समुत्पन्न हुई थी और उस समय विनम्रता से अवनत हो गयी थी। इसके अनन्तर उस सती ने देव ब्रह्माजी और देवर्षि ने उसी सती को प्रणाम किया था। प्रणाम करने के अन्त में ब्रह्माजी ने उस सती को विनय से अवनत स्वरूप का दर्शन किया था। तब नारदजी ने उस सती को यह आशीर्वाद कहा था कि जो तुम्हारी प्राप्ति की कामना करता है और जिसको तुम अपना पति बनाने की कामना किया करती हो उन सर्वज्ञ जगदीश्वर देव को अपने पति के स्वरूप में प्राप्त करो। जो अन्य किसी भी नारी को ग्रहण करने वाले नहीं हुए थे और न ग्रहण करते हैं तथा अन्य जाया को ग्रहण करेंगे भी नहीं। हे शुभे! वही आपके पति होवें, जो अनन्य सदृश हैं अर्थात् जिनके सरीखा अन्य कोई भी नहीं है। इतना कहकर वे दोनों (ब्रह्मा और नारद) फिर दक्ष प्रजापति के आश्रय में स्थित

होकर हे द्विजसत्तमो! उस दक्ष के द्वारा पूजित किए गए थे और वे दोनों अपने स्थान पर चले गए थे।

श्री हरि द्वारा शिव का अनुनयन

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—सती देवी अपना बचपन व्यतीत करके फिर परमाधिक शोभन यौवन को प्राप्त हो गई थी और अत्यधिक रूप लावण्य से सुसम्पन्न वह समस्त अंगों के द्वारा सुमनोहर अर्थात् बहुत ही अधिक मन को हरण करने वाली सुन्दरी थी। दक्ष प्रजापति ने जो लोकों का ईश था उस सती को देखा कि वह यौवन से सुसम्पन्न पूर्ण युवती हो गई हैं। तब उसने यह चिन्ता की थी कि इस सती भी प्रतिदिन स्वयं ही भगवान् शम्भु को प्राप्त करने की इच्छा रखने वाली हो गयी थी। उस सती ने अपनी माता की आज्ञा से भगवान् शम्भु की आराधना की थी जो अपने घर में स्थित होकर की गयी थी। आश्विन मास में नन्दाकाख्या में गुड़ और ओदन से सहित लवणों से हर का योजन करके इसके पश्चात् उसने वन्दना की थी। कार्तिक मास की चतुर्दशी तिथि में पुओं के सत्ति प्रपायसों (खीर) से जो समाकीर्ण थे भगवान् हर की समाराधना करके फिर परमेश्वर प्रभु शम्भु का स्मरण किया था। मार्गशीर्ष मास में कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में तिलों के सहित यव और ओदनों से भगवान् हर का पूजन करके फिर नीलों के द्वारा दिवस को व्यतीत करती थी। पौष मास में कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि के दिन में रात्रि में जागरण करके प्रातःकाल में शिव का उस सती ने कृसरान्न के द्वारा यजन किया था।

माघ मास की पूर्णमासी में रात्रि में जागरण करके गीले वस्त्र धारण करती हुई नदी के तट पर भगवान् हर का पूजन करती थी। उस पूरे मास में भगवान् शम्भु में नियत मन वाली ने नियत आहार किया था जो अनेक प्रकार के फलों और पुष्पों से ही किया गया था जो भी उस काल में समुत्पन्न होने वाले थे। माघ मास में विशेष रूप से कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में रात्रि जागरण करके देव का विल्व पत्रों के द्वारा

यजन किया करती थी। चैत्र मास में शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी में पलाश के पुष्पों से भगवान् शिव की पूजा की थी और दिन तथा रात में उनका स्मरण करते हुए समय को व्यतीत किया था। वैशाख मास में शुक्ल पक्ष की तृतीया के दिन में यवों के सहित ओदनों के द्वारा देव शम्भु का यजन करके द्रव्यों पूरे मास अुनचरण किया करती थी। वृषवाहन प्रभु का स्मरण करती हुई उस सती ने निराहार रहकर ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा तिथि में वृषवाहन देव का यजन करके वसनों से और पुष्पों के द्वारा उसको पूर्ण किया था। आषाढ़मास की चतुर्दशी तिथि में जो कि शुक्ल पक्ष की थी कृतिवासा देव का वृहती के पुष्पों के द्वारा यजन करके उसने उसी भाँति पूजन किया था।

श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि के दिन और चतुर्दशी में उसने पवित्र यज्ञोपवीतों तथा वस्त्रों के द्वारा देव का पूजन किया था। भाद्रपद मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में नाना भाँति के फल तथा पुष्पों के द्वारा भली-भाँति देव का भजन करके चतुर्दशी में जल का ही भोजन किया था। इस प्रकार से जो पूर्व में व्रत सती ने आरम्भ किया था उसी समय में सावित्री के सहित ब्रह्माजी भगवान् शम्भु के समीप हुए थे। भगवान् वासुदेव भी अपनी लक्ष्मी देवी के सहित उनके सन्निधि में गए थे। जहाँ पर भगवान् शम्भु हिमालय गिरि के प्रस्थ पर अपने गणों के सहित विराजमान थे। भगवान् शम्भु के उन दोनों ब्राह्मणों की ओर भगवान् कृष्ण को देखकर जो अपनी पत्नियों के साथ संगत हुए वहाँ पर प्राप्त हुए थे जैसा भी समुचित शिष्टाचार था उसी के अनुसार उनसे सम्भाषण करके उनके यहाँ पर समागमन का कारण शंकर प्रभु ने पूछा था। इस प्रकार से उन दोनों का दर्शन करके जो दाम्पत्य भाव से संगत थे, शम्भु ने भी दारा से परिग्रहण करने की इच्छा मन में की थी। इसके उपरान्त तात्विक रूप से अपने आगमन का कारण पूछा कि आप लोग यहाँ पर किस प्रयोजन को सुसम्पादित किए जाने के लिए समागत हुए हैं और आपका यहाँ पर क्या कार्य हैं ? इसी रीति से भगवान् शम्भु के द्वारा पूछे गए वे दोनों में से लोकों

के पितामह ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु के द्वारा प्रेरित होकर महादेव जी से कहा था।

ब्रह्माजी ने कहा–हे त्रिलोचन! जिस कार्य के सम्पादन कराने के लिए यहाँ पर हम दोनों ही आये हैं उसका अब आप श्रवण कीजिए। हे वृषभध्वज! विशेष रूप से तो हम दोनों का आगमन देव अर्थात् आपके ही लिए है और सम्पूर्ण विश्व के लिए भी है। हे शम्भो! मैं तो केवल सृजन करने के ही कार्य में निरत रहता हूँ और यह भगवान् हरि उस सृष्टि के पालन करने के कार्य संलग्न में रहा करते हैं और आप इस सृष्टि का संहार करने में रत हुआ करते हैं यही प्रतिसर्ग में जगत् का कार्य होता रहता है। उस कर्म में सदैव मैं आप दोनों के सहित समर्थ हूँ। यह हरि मेरे और आपके सहयोग के बिना समर्थन नहीं होते हैं। आप संहार करने में हम दोनों के सहयोग के बिना समर्थ नहीं होते हैं। इस कारण हे वृषभध्वज! परस्पर के कृत्यों में सभी की सहायता आवश्यक है। हमारी सहायता सदा योग्य ही है अन्यथा यह जगत् नहीं होता है। कुछ ऐसे हैं आपके वीर्य से समुत्पन्न होने वाले के द्वारा वध के योग्य हैं और मेरे अंश से समुत्पन्न के द्वारा वध के लायक होते हैं। दूसरे ऐसे हैं जो माया के द्वारा देवों के बैरी असुर वध के योग्य होते हैं।

आप तो जब योग से मुक्त होते हैं और राग-द्वेष से मुक्त हैं तथा केवल प्राणियों पर ही दया करने में निरत रहा करते हैं तो आपके द्वारा असुर वध करने के योग्य नहीं हो सकते हैं। हे ईश! उनके अबाधित रहने पर यह सृष्टि और स्थिति कैसे संभव हो सकते हैं ? हे हर! जब सृजन, पालन और संहार के कर्म न करने योग्य होंगे तब हमारा शरीर भेद और माया का भी युक्त नहीं होता है। वैसे हम सब एक ही स्वरूप वाले हैं अर्थात् तात्पर्य यह है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इन तीनों का एक ही शक्ति स्वरूप हैं हम सब कार्यों के विभिन्न होने ही से भिन्न रूप वाले होते हैं। यदि कार्यों का भेद सिद्ध नहीं होता है तो यह रूपों का भेद भी प्रयोजन से रहित ही है। वैसे एक ही तीनों रूपों में होकर

हम विभिन्न स्वरूप वाले होते हैं। हे महेश्वर! यह सनातन अर्थात् सदा से चला आया तत्व है इसको जान लीजिए। यह माया भी भिन्न रूपों से कमला नाम वाली अर्थात् महालक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री तथा सन्ध्या कार्यों के भेद से ही भिन्न हुई हैं। हे महेश्वर! अनुराग की प्रवृति का मूल नारी ही है। रामा के परिग्रह से ही पीछे काम, क्रोध आदि का उद्भव (जन्म) होता है।

काम क्रोध आदि के कारणस्वरूप अनुराग के होने पर यहाँ पर जन्तुगण विराग के हेतु का यत्नपूर्वक सान्त्वन किया करते हैं। अनुराग के वृक्ष से संग ही सर्वप्रथम महान् फल होता है। उसी संग से काम की समुत्पत्ति हुआ करती है। काम से क्रोध उत्पन्न होता है। स्वाभाविक ज्ञान से ही वैराग्य और निवृत्ति होती है। संसार की विमुखता से सनातन हेतु असंग ही होती है। हे महेश्वर! यहाँ पर दया नित्य ही हुआ करती हैं अर्थात् जो संसार से विमुख हैं उसमें नित्य ही दया का होना आवश्यक है और दया के साथ-साथ शान्ति भी होती है। अहिंसा और तप, शान्ति ज्ञानमार्ग का अनुसाधन है। आपके तपोनिष्ठ, विसंगी अर्थात् संगरहित तथा दया से संयुत होने पर अहिंसा तथा शान्ति आपको सदा ही होगी। इसके न करने पर जो-जो दोष हैं वे सभी आपको बतला दिए गए हैं। हे जगत्पते! इस कारण से आप विश्व के और देवों के हित के लिए भार्यार्थ में एक परमशोभना वामा का परिग्रहण करें। जिस प्रकार से लक्ष्मी भगवान् विष्णु की पत्नी है और सावित्री मेरी पत्नी है उसी भाँति शम्भु की जो सहचारिणी होवे उसका ही आप परिग्रहण कीजिए।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस तरह से हर के आगे ब्रह्माजी के वचन का श्रवण कर मन्द मुस्कराहट के सहित मुख वाले हरि ने उस समय में लोकों के ईश ब्रह्माजी से कहा। ईश्वर ने कहा—जो आपने कहा है वह इसी प्रकार से तथ्य है। ब्रह्माजी! यह विश्व के ही निमित्त से होना ही चाहिए किन्तु स्वार्थ से भली-भाँति ब्रह्मा के चिन्तन करने से मेरी प्रवृत्ति नहीं होती है। तो भी वह मैं करूंगा जो जगत् की भलाई

के लिए आप कहेंगे। सो हे महाभाग! आप श्रवण कीजिए। जो मेरे तेज को सहन करने में भागशः समर्थ हो यहाँ पर भार्या के ग्रहण करने में उसी को आप बतलाइये जो योगिनी और कामरूपिणी दोनों ही होवे। जब मैं योग में युक्त होऊँ उस अवसर पर उसी भाँति वह भी योगिनी हो जावेगी और जिस समय में कामवासना में आसक्त होऊँ तो उस अवसर पर वह मोहिनी ही होवेगी। हे ब्रह्माजी! भार्या के लिए उसी को आप बतलाइए जो वरवर्णिनी होवे। वेदों के ज्ञाता महामनीषीगण जो अक्षर को जानते हैं अर्थात् जिस अक्षर का ज्ञान रखते हैं उसी परमज्योति के स्वरूप वाले को जो सनातन है मैं चिन्तन करूँगा।

हे ब्रह्माजी! मैं उसी की चिन्ता में सदा आसक्त होता हुआ भावना को गमन किया करता हूँ अर्थात् भावना में निमग्न हो जाता हूँ। उस भावना में जो विघ्न डालने वाली हो वह मेरी होने वाली वाम न होवे। हे महाभाग! आप अथवा विष्णु भगवान् या मैं भी सब पर ब्रह्मा के रूप वाले हैं और एक दूसरे के अंगभूत हैं। जो योग्य हो उसका ही अनुचिन्तन करो। हे कमलासन! उसकी चिन्ता के बिना मैं स्थित नहीं रहूँगा उस कारण से ऐसी ही जाया को बतलाइए जो सदा मेरे कर्म के ही अनुगत रहने वाली होवे। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–सम्पूर्ण जगतों के स्वामी ब्रह्माजी ने यह उनके वचन का श्रवण कर स्थिति के सहित प्रसन्न मन वाले ने यह वचन कहा था। ब्रह्माजी ने कहा–हे महादेव! जैसी आपने वर्णित की है वैसी ही एक है जो प्रजापति दक्ष की तनया (पुत्री) हुई है जिसका नाम 'सती' है और वह परम शोभना है। वह ऐसी सुधीमती आपकी भार्या होगी। उसी को जो आपको पति के रूप में प्राप्त करने के लिए कामिनी है। उसको आप जान लीजिए। हे देवेश्वर! आप तो सभी आत्माओं में वर्तमान रहने वाले हैं।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इनके अनन्तर ब्रह्माजी के वचन के उपरान्त भगवान् मधुसूदन ने कहा कि जो कुछ भी ब्रह्माजी ने कहा है वह सब आप करिए। उन शंकर प्रभु के द्वारा 'मैं वही मरूंगा', ऐसा कहने पर वे दोनों (ब्रह्मा और विष्णु) अपने-अपने आश्रमों को चले

गए थे। ब्रह्माजी और हरि भगवान् बहुत ही प्रसन्न हुए जो कि सावित्री और कमला से संयुत थे। कामदेव भी महादेव जी के वचन का श्रवण करके अपने मित्र (बसन्त) के सहित और पत्नी रति के साथ में आमोद से युक्त हो गया था। उसने विविक्त रूप वाला होकर शम्भु को प्राप्त कर निरन्तर बसन्त को विनियोजित कर वहीं पर स्थित हो गया।

सती से विवाह प्रस्ताव

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–इसके अनन्तर सती ने पुनः शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में उपवास किया था और आश्विन मास में देवेश्वर का भक्ति भाव से पूजन किया था। इस तरह से इस नन्दा व्रत के पूर्ण हो जाने पर नवमी तिथि में दिन के भाग में भक्तिभाव से परमाधिक विनम्र उस सती को भगवान् हर प्रत्यक्ष हो गये थे अर्थात् सती के समक्ष में प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित हो गए थे। प्रत्यक्ष रूप से हर का अवलोकन करके सती आनन्द युक्त हृदय वाली हो गयी थी। फिर उस सती ने लज्जा से अवनत होते हुए विनम्र होकर उनके चरणों में प्रणाम किया था। इसके अनन्तर महादेवजी ने उस व्रत के धारण करने वाली सती से कहा था। शिव स्वयं भार्या के लिए उसकी इच्छा करने वाले होते हुए भी उसके आश्चर्य के फल के प्रदान कराने वाले हुए थे। ईश्वर ने कहा–हे दक्ष की पुत्री! आपके इस व्रत से मैं परम प्रसन्न हो गया हूँ। अब आप वरदान का वरण कर लो जो भी आपको अभिमत होवे। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–जगत् के स्वामी महादेव उसके भाव को जानते हुए उस सती के वचनों के श्रवण करने की इच्छा से 'वरदान माँग लो' यह बोले थे। वह सती भी लज्जा से समाविष्टा होती हुई जो कुछ भी हृदय में स्थित था उसके कहने में समर्थ न हो सकी थी क्योंकि बाला को जो भी मनोरथ अभीष्ट था वह लज्जा से समाच्छादित हो गया था अर्थात् लज्जावश उस अभीप्सित को मन में ही रखकर कुछ भी न बोल सकी थीं।

इसी बीच में कामदेव उस समय में अभिप्राय के सहित हर की नेत्र मुख और व्यापार से चिन्हित प्राप्त करके विवर चाप का पुष्पहेति के द्वारा सन्धान करने वाला हो गया था। इसके अनन्तर हर्षण बाण के द्वारा उसने (कामदेव ने) हर के हृदय बेधन किया था। इसक उपरान्त हर्षित शम्भु ने फिर एक बार सती को देखा था । उस समय में परमेश्वर शिव ने परब्रह्म के चिन्तन को एकदम भुला ही दिया था। फिर इस कामदेव ने मोहनबाण के द्वारा भगवान् हर को बेधित किया था। तब हर्षित होकर शम्भु उस अवसर पर बहुत ही अधिक मोहित हो गये थे। हे द्विजोत्तमों! जब इन्होंने मोह और हर्ष को व्यक्त कर दिया था तो वह माया के द्वारा भी विमोहित हो गये थे। इसके अनन्तर सती ने अपनी लज्जा को स्तम्भित करके जिस समय में हर से वह बोली थी—हे वरद! मेरे अभीष्ट वर इस अर्थ को करने वाले को प्रदान करिए। उस समय में सती के वाक्य के अवसान की प्रतीक्षा न करके ही वृषभध्वज ने दाक्षायणी से पुनः 'मेरी भार्या हो जाओ' कहला दिया था।

हर के यह वचन सुनकर जो अभीष्ट के फल का भावना से युक्त था वह सती मनोगत वर की प्राप्ति करके परम प्रमुदित होती हुई मौन होकर स्थित हो गयी थी। हे द्विजोत्तमो! कामवासना से समन्वित महादेवजी आगे वहाँ पर ब्रह्म चारुहास वाली सती ने अपने हावों और भावों से किया था। उस समय में अपने भावों का आदान-प्रदान करके शृंगार नामक रस ने उन दोनों में प्रवेश किया था। वे विप्रेन्द्रों! भगवान् हर के आगे स्निग्ध भिन्न अंजन की प्रभा से समान प्रभा वाली, स्फटिक के समान उज्ज्वल कान्ति वाले हर के सामने चन्द्रमा के समीप में अंकलेख की तरह राजित हुई थी। इसके अनन्तर दाक्षायणी पुनः उन महादेवजी से बोली थी—हे जगत्पते! मेरे पिता के सामने गोचर होकर मुझे ग्रहण कीजिए। उस समय में देवी सती ने इस प्रकार से जो स्मितयुक्त वचन कहा था कि 'मेरी भार्या हो जाओ' यह महादेव जी ने कहा था। इसके अनन्तर कामदेव यह देखकर रति और अपने मित्र

वसन्त के साथ प्रसन्नता से युक्त हो गया था और निरन्तर अपने आपको अभिनन्दित किया था।

हे द्विजोत्तमों! इसके अनन्तर दाक्षायणी ने शम्भु को समाश्वासित करके हर्ष और मोह से समन्विता होती हुई वह सती माता के समीप गयी थी। भगवान् हर भी हिमालय के प्रस्थ से प्रवेश करके जो कि उनका आश्रम था दाक्षायणी के विप्रलम्भ (वियोग) के दुःख से ध्यान में परायण हो गए थे। इसके उपरान्त विप्रलब्ध भी अर्थात् वियोग से युक्त होते हुए भी उन्होंने ब्रह्माजी के वाक्य का स्मरण किया था जो कि जाया के परिग्रहण के अर्थ में पद्मयोनि ने (ब्रह्माजी ने) कहा था। पहले विश्वास से ब्रह्मवाक्य के पर का स्मरण करके ही वृषभध्वज मन से ब्रह्माजी का चिन्तन करने लगे थे। इसके अनन्तर चिन्तन किए हुए यह परमेष्ठी (ब्रह्मा) त्रिशूली के आगे शीघ्र ही इष्ट की सिद्धि से प्रेरित हुए प्रविष्ट हुए थे जहाँ पर हिमालय के प्रस्थ में यह विप्रलब्ध भगवान् शम्भु विराजमान थे। सावित्री के सहित ब्रह्माजी वहाँ पर ही उपस्थित हो गए थे। इसके उपरान्त भगवान् हर ने सावित्री के सहित धाता को देखकर बड़ी ही उत्सुकता के साथ विप्रलब्ध शम्भु सती से बोले।

ईश्वर ने कहा—हे ब्रह्माजी, विश्व के अर्थ जो दारा के परिग्रहण की कृति में आपने जो कहा था वह अब मुझे उस सार्थक की ही भाँति प्रतीत होता है। अत्यन्त भक्ति से दाक्षायणी के द्वारा मेरी आराधना की गयी है। जिस समय में उसके द्वारा प्रपूजित मैं उसको वरदान देने के लिए गया था तब उसके समीप कामदेव ने विशाल बाणों से वेध दिया था और मैं माया से मोहित हो गया था कि मैं उसका प्रतिकार शीघ्र ही करने में असमर्थ हो गया हूँ देवी का वाँच्छित मैंने यह भी देखा था। हे विभो! व्रत की भक्ति से प्रसन्नता से समन्वित मैं उसका भर्त्ता हो जाऊँ। इससे हे प्रजापते! अब आप विश्व के लिए और मेरे लिए ऐसा करें कि दक्ष प्रजापति मुझे आमन्त्रित करके अपनी पुत्री को मुझे शीघ्र ही प्रदान कर देवे। आप दक्ष के भवन में गमन कीजिए और मेरा वचन

उनसे कहिए कि जिस प्रकार से सती का वियोग भस्म हो जावे वैसा ही पुनः आप करें।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इस प्रजापति के सकाश में महादेव जी ने यह इतना कहकर उन्होंने सावित्री का अवलोकन किया था तो उनको सती का विप्रयोग विशेष बढ़ गया था। लोकों के ईश ब्रह्माजी ने उनसे सम्भाषण करके वे आनन्द से संयुत कृत-कृत्य अर्थात् सफल हो गये थे और उन्होंने जगतों का हित तथा शिव का हित कर यह वचन कहा था। ब्रह्माजी ने कहा हे वृषभध्वज! हे भगवान्! हे शम्भो! जो आप कहते हैं उसमें विश्व का अर्थ तो सुनिश्चित ही है। इसमें आपका स्वार्थ नहीं है और न कोई मेरा स्वार्थ है। दक्ष तो अपनी पुत्री को आपके लिए स्वयं ही दे देगा और मैं भी आपके वाक्य को उसके ही समक्ष कह दूँगा। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–लोक पितामह ब्रह्माजी ने यह महादेवजी से कहकर अतीव वेग वाले स्पन्दन द्वारा वे दक्ष प्रजापति के निवास स्थान पर गये थे। इसके अनन्तर उधर दक्ष भी सम्पूर्ण वृतान्त सती के मुख से सुनकर यह चिंता कर रहा था कि यह मेरी पुत्री शम्भु को कैसे दे दी जावे। आये हुए भी महादेव परम प्रसन्न होकर चले गए थे वह भी पुनः ही सुता के लिए कैसे इक्षित हैं अथवा मुझे उनके निकट शीघ्र ही कोई दूत भेजना चाहिए। यह योग्य नहीं है कि यदि विभु अपने लिए इसको न ग्रहण करें तो एक अनुचित ही बात होगी।

मैं उन्हीं वृषभध्वज की पूजा करूँगा कि जिस तरह से वह स्वयं ही मेरी पुत्री के स्वामी हो जावें। वे भी इसी के द्वारा अत्यन्त प्रयत्न के साथ अतीव वांच्छा करती हुई से पूजित हुए हैं। शम्भु मेरे भर्ता होवे और इस प्रकार से उन्होंने उसे वर भी दिया। इस रीति से दक्ष चिन्तन कर रहे थे कि उसी समय में ब्रह्माजी उसके आगे समुपस्थित हो गये। वे हंसों के रथ में सावित्री के साथ ही विराजमान थे। प्रजापति दक्ष ने ब्रह्माजी को देखकर उनका प्रणिपात किया था और वह विनम्र होकर स्थित हो गया था। उसने उनको आसन दिया था और यथोचित

रीति से सम्भाषण किया था। इसके अनन्तर उन सब लोकों के ईश से वहाँ पर आगमन का कारण दक्ष ने पूछा था। हे विपेन्द्रों! वह दक्ष चिन्ता से आविष्ट भी था किन्तु हर्षित हो रहा था। दक्ष ने कहा—हे जगतों के गुरुवर! यहाँ पर आपके आगमन का कारण बतलाइए? आप पुत्र के स्नेह से अथवा किसी कार्य के वश में इस आश्रम में समागत हुए हैं। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस प्रकार से महात्मा दक्ष के द्वारा पूछे गये सुरश्रेष्ठ (ब्रह्माजी) ने उस प्रजापति दक्ष को आनन्दित करते हुए हँसकर यह वाक्य कहा था।

ब्रह्माजी ने कहा—हे दक्ष! सुनिए, मैं तुम्हारे जिस कार्य के लिए यहाँ पर समागत हुआ हूँ वह कार्य लोकों का हितकर है तथा पथ्य है और आपका भी अभीप्सित है। तेरी पुत्री ने जगत् के पति महादेव की समाराधना करके जो वर प्राप्त करने की उनसे प्रार्थना की थी वह आज स्वयं ही गृह में समागत हुए है। शम्भु ने आपकी पुत्री के लिए आपके समीप में मुझे पुनः प्रस्थापित किया है जो कृत्य परम श्रेय है उसका अवधारण करिए। जिस समय वरदान देने को वे आए थे तभी से लेकर आपकी पुत्री के वियोग से शीघ्र ही कल्याण की प्राप्ति नहीं कर रहे हैं, कामदेव ने भी उस समय अत्यधिक बेधन किया था उसे जगत् के प्रभु का बेधन सभी पुष्कर बाणों से एक ही साथ किया था। वह कामदेव के द्वारा बाणों से बिद्ध होकर आत्मा का परिचिन्तन त्याग कर जैसे कोई सामान्य जन हो उसी भाँति अतीव व्याकुल वाणी को भुलाकर विप्रयोग से गणों के आगे अन्य कृति में भी 'सती कहाँ है' यह बोला करते हैं।

मैंने जो पूर्व में चाहा था और आपने तथा कामदेव ने इच्छा की थी एवं मरीचि आदि मुनिवरों ने जिसकी इच्छा की थी। हे पुत्र! वह कार्य अब सिद्ध हो गया है। आपकी पुत्री के द्वारा शम्भु की आराधना की गई थी और वे भी उस तुम्हारी पुत्री विचिन्तन से हिमवद्गिरि में अनुमोदन करने के लिए इच्छुक हैं। जिस प्रकार से अनेक प्रकार के भावों के द्वारा सती ने नन्दा के व्रत से शम्भु की आराधना की थी ठीक

उसी भाँति उनके द्वारा सती की आराधना की जा रही है। इसलिए हे दक्ष! शम्भु के लिए परिकल्पित अपनी पुत्री सती को बिना विलम्ब किए हुए उनको दे दो उसी से आपकी कृतकृत्यता अर्थात् सफलता है। मैं उनको नारद द्वारा आपके आलय में ले आऊँगा। उसके लिए आप भी इस सती को जो कि उन्हीं के लिए परिकल्पित है उन्हें दे दो। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–दक्ष ने 'ऐसा ही होगा', यह दक्ष ने ब्रह्माजी से कहा था और ब्रह्माजी भी वहाँ से उसी स्थान पर चले गऐ थे जहाँ पर भगवान् शम्भु विराजमान थे। ब्रह्माजी के चले जाने पर दक्ष प्रजापति भी अपनी दारा और तनया के साथ आनन्दयुक्त हो गया था और पीयूष से परिपूरित की ही भाँति पूर्ण देह वाला हो गया था।

इसके अनन्तर कमलासन ब्रह्माजी भी मोद से प्रसन्न होकर महादेवजी के समीप प्राप्त हो गये थे जो कि हिमालय पर्वत पर संस्थित थे। वृषभध्वज ने उन आते हुए लोकों के स्त्रष्टा को देखकर वे सती की प्राप्ति में बारम्बार मन में संशय कर रहे थे। इसके अनन्तर दूर ही ही से साम से समन्वित ब्रह्माजी को महादेवजी ने जो कामवासना को भस्म में धारण किए थे और कामदेव के द्वारा उन्मादित हो गये थे, कहा था। ईश्वर ने कहा–हे ब्रह्माजी! आपके पुत्र (दक्ष) ने सती के अर्थ में स्वयं क्या कहा था? आप मुझे बतलाइए जिससे कामदेव के द्वारा मेरा हृदय विदीर्ण न किया जावे। बाधमान विप्रयोग सती के बिना मुझको हनन कर रहा है। हे सुरश्रेष्ठ! यह कामदेव अन्य सब प्राणियों का त्याग कर मेरे ही पीछे पड़ा हुआ है। हे ब्रह्माजी! वह सती जिस तरह से भी मुझे प्राप्त हो जावे वही आप शीघ्र ही करिए। ब्रह्माजी ने कहा–हे वृषभध्वज! सती के अर्थ में जो मेरे पुत्र (दक्ष) ने कह दिया था उसको आप सुनिए और अपना साध्य सिद्ध हो गया, यही अवधारित कर लीजिए।

उसने कहा था कि मुझे मेरी पुत्री उन्हीं के लिए देने के योग्य है और उनके लिए ही वह परिकल्पिता है। यह कर्म तो मुझे भी अभीष्ट था ही किन्तु अब आपके वाक्य से पुनः अधिक अभीप्सित हो गया है।

मेरी पुत्री के द्वारा शिव समाराधित किए गए हैं और इसी के लिए उसने स्वयं ही ऐसा किया है और वे शिव भी उनकी इच्छा करते हें अर्थात् सती को भार्या के रूप में पाना चाहते हैं। इसी कारण से मुझे इसको हर के ही लिए देना चाहिए। अर्थात् मैं उन्हीं को दूँगा। वे शिव किसी शुभ मुहूर्त और शुभ लग्न में मेरे समीप में आ जावें। हे ब्रह्माजी, उसी समय में मैं भिक्षार्थ में शम्भु के लिए अपनी पुत्री सती को दे दूँगा।

हे वृषभध्वज ! दक्ष ने यही प्रसन्नता के साथ कहा था। इसलिए आप किसी परम शुभ मुहूर्त में उस सती की अनुयाचना करने के लिए उन (दक्ष) के समीप में गमन कीजिए। ईश्वर ने कहा–मैं आपके साथ तथा महात्मा नारद जी के साथ ही यहाँ से गमन करूँगा। हे जगतों के द्वारा पूज्य! इस कारण से आप शीघ्रताशीघ्र ही नारद जी का स्मरण करिए। मरीचि आदि दस मानस पुत्रों को भी स्मरण करिए उन सबके ही साथ मैं अपने गणों सहित दक्ष के निवास स्थान पर जाऊँगा। इसके अनन्तर कमलासन प्रभु के द्वारा वे सब स्मरण किए गए थे जो मन के समान वेग वाले ब्रह्माजी के पुत्र नारद के ही सहित थे।

तीनों देवों का एकत्व प्रतिपादन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–फिर वहाँ पर देवर्षि नारद जी के सहित सभी मानस पुत्र समागत हो गये थे। ये सब ब्रह्माजी के द्वारा किए हुए केवल स्मरण से ही बात के द्वारा विशेष प्रेरित जैसे होवें वैसे ही सब वहाँ उपस्थित हो गए थे। उनके साथ और ब्रह्माजी के साथ में अपने गणों के साथ में लेकर भगवान् शम्भु मोह से संगत होते हुए दक्ष के निवास मन्दिर में गये थे। इसके अनन्तर उनके कर्म के योगी काल के आने पर गणों ने शंख, पट्टह, डिण्डिम, सूर्यवंशी को वादित किया था और आनन्द से युक्त हुए वे सब शंकर का अनुगमन करते हैं। कुछ ताल बजा रहे थे और कोई करतलों के द्वारा अघ्रितल की ध्वनि कर रहे थे। वे सब अपने अति वेग वाले विमानों के द्वारा वृषभध्वज का अनुगमन करते हैं। अनेक तरह की आकृतियों वाले गण भारी

कोलाहल करते हुए तथा बुरी तरह की ध्वनि को करने वाले शब्दों के योग से ही वहाँ से अर्थात् शिव के आश्रम से निर्गत हुए थे। इसके उपरान्त आनन्द से युक्त देव, गन्धर्व और अप्सराओं के गण वाद्यों के द्वारा मोह को करते हुए तथा नृत्यों से समन्वित हुए वृषभध्वज का अनुगमन कर रहे थे। हे विपेन्द्रों ! गन्धर्वों तथा गणों के उस शब्द से सब दिशायें तथा समस्त वसुन्धरा परिपूरति हो गए थे अर्थात् वह ध्वनि सर्वत्र फैलकर भर गई थी।

कामदेव भी अपने गणों के सहित शृंगार रस आदि के साथ काम को मोहित करता हुआ अनुगत हुआ था। भार्या के लिए भगवान् हर के गमन करने पर उस समय में समस्त सुर ब्रह्मा आदि स्वयं ही मनोहर शब्द कर रहे थे। हे द्विजश्रेष्ठों! सभी दिशायें सुप्रसन्न हुई थीं। परम शान्त अग्नियाँ प्रज्वलित हो गयी थीं और आकाश से पुष्पों से समन्वित हो गए थे। जो कोई अस्वस्थ भी थे वे भी सभी प्राणी स्वस्थ हो गये थे। हंस और सारसों के समुदाय नील कम्बु और चकोर ईश्वर की प्रेरणा करते हुए के ही समान परम मधुर शब्दों को कर रहे थे। शिवजी को भुजंग (सर्प), बाघम्बर, जटाजूट, चन्द्रकला भूषणता को प्राप्त हुए थे वह इन भूषणों से भी अधिक दीप्त हो रहे थे। इसके अनन्तर एक क्षण में बलवान् और वेग वाले बलीवर्द (बैल) के द्वारा ब्रह्मा और नारद आदि के सहित शिव दक्ष के निवास स्थान पर पहुँच गए थे।

इसके उपरान्त महान तेजस्वी प्रजापति दक्ष ने स्वयं शिव का स्वागत करके ब्रह्मा आदिक के लिए उनके लिए जैसे भी उचित थे, आसन दिए थे। उसी भाँति अर्घ्य, पाद्य आदि से उन सबकी समुचित पूजा करके जैसी भी योग्य थी फिर दक्ष मानस मुनियों के साथ संविद किया था। हे द्विज सत्तमों! इसके उपरान्त शुभमुहूर्त्त और लग्न में प्रजापति दक्ष ने बड़े ही हर्ष से अपनी पुत्री सती को शम्भु भगवान् के लिए प्रदान किया था। शम्भु ने भी सभी विधि से हर्षित होकर सती का परिग्रहण किया था। वृषभध्वज ने परम श्रेष्ठ तनु वाली दाक्षायणी

से उस समय में पाणि का ग्रहण किया। ब्रह्मा और नारद आदि मुनियों ने सामवेद की गीतियों से ऋचाओं से तथा सुश्राव्य यजुर्वेद के मन्त्रों से ईश्वर को तोषित किया था। सब गणों ने वाद्यों का वादन किया था और अप्सराओं के गणों ने नृत्य किया था। आकाश में संगत मेघ ने पुष्पों की वृष्टि की थी। इसके अनन्तर भगवान् गरुड़ध्वज कमला (लक्ष्मी) के साथ में अत्यन्त वेग वाले गरुड़ द्वारा भगवान् शम्भु के समीप उपस्थित होकर यह वचन बोले थे।

श्री भगवान् ने कहा—हे हर! जिस प्रकार से लक्ष्मी के साथ से मैं शोभायमान होता हूँ ठीक उसी भाँति स्निग्ध नीलअंजन के समान श्वास शोभा से समन्वित दाक्षायणी के साथ आप शोभा को प्राप्त हो रहे हैं। आप इसी सती के साथ में विराजमान होकर देवों की अथवा मानवों की रक्षा करो। इस सती के साथ संसार वालों का सदा मंगल करो। हे शंकर! यथायोग्य दस्युओं का हनन करेगा। अभिलाषा के सहित जो भी इसको देखकर अथवा श्रवण करेगा। हे भूतेश! उसका हनन करोगे इसमें कुछ भी विचारणा नहीं है अर्थात् इसमें कुछ भी संशय नहीं है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे द्विजो! प्रीति से प्रसन्न मुख वाले सर्वज्ञ प्रभु ने प्रसन्न मन वाले परमेश्वर से 'ऐसा ही होवे' यह कहा था। इसके अनन्तर उस समय से ब्रह्माजी ने चारु (सुन्दर) हास वाली दक्ष की पुत्री सती का दर्शन करके कामदेव से आविष्टा मन वाले होते हुए उसके मुख को देखने लगे थे। उस समय ब्रह्माजी ने बारम्बार सती के मुख का अवलोकन किया था और फिर अवश होते हुए उस समय में इन्द्रियों के विकार को प्राप्त हुए थे।

हे द्विजोत्तमों! इसके अनन्तर उनका तेज शीघ्र ही भूमि पर गिर गया था जो कि मुनि के आगे उस समय में वह जल दहन की आभा वाला था। हे द्विजसत्तमों! इसके उपरान्त उससे मेघ शब्द से संयुत हो गए थे। अब उन सुसज्जित मेघों के नाम बतलाए जाते हैं—सम्वर्त्त, अवर्त्त, पुष्कर और द्रोण। वे गर्जना करते हुए और जलों को मोचित करने वाले थे। उन मेघों के द्वारा आकाश के संच्छादित हो जाने पर

अर्थात् सर्वआकाश मेघों के द्वारा घिरा हुआ हो जाने पर भगवान् शंकर कामवासना से मोहित होते हुए दाक्षायणी देवी को अतीव देखते हुए कामदेव के द्वारा मोहित हुए । इसके उपरान्त उस समय में भगवान् विष्णु के वचन का स्मरण करते हुए शंकर ने शूल को उठाकर ब्रह्माजी का हनन करने की इच्छा की थी । हे द्विजोत्तमों! शम्भु के द्वारा ब्रह्माजी को मारने के लिए त्रिशूल के उद्यमित करने पर अर्थात् उठाये जाने पर मरीचि और नारद आदि सब उस समय में हाहाकार करने लगे थे। प्रजापति दक्ष ऐसा मत करो, ऐसा मत करो, कह कहते हुए शंकित होते हाथ को उठाकर शीघ्र ही आगे समागत होकर भूतेश्वर प्रभु को निवारित किया था। इसके उपरान्त उस समय में महेश्वर ने दक्ष को मलिन देखकर भगवान् विष्णु की वाणी को स्मरण कराते हुए यह प्रिय वचन बोला था।

ईश्वर ने कहा–हे विपेन्द्र! नारायण ने जो इस समय में कहा था, हे प्रजापते! वह यहाँ पर ही मैंने भी अंगीकार किया था। जो भी इस सती को कामवासना की अभिलाषा से युक्त होते हुए देखता है उसको आप मार डालेंगे। मैं इस वचन को इसका हनन करे सफल करता हूँ। ब्रह्माजी ने अभिलाषा अर्थात् कामवासना की इच्छा से समन्वित होकर क्यों सती का अवलोकन किया था। वह तेज के त्याग करने वाले हो गये थे इसी से उसका हनन मैं करता हूँ क्योंकि वे अपराध (पाप) करने वाले हैं। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इस रीति से बोलने वाले उनके आगे स्थित होकर भगवान् विष्णु ने बड़ी शीघ्रता की थी। समस्त जगत के प्रभु ने उनको मारने का निवारण करते हुए यह वचन कहा था। श्री भगवान् ने कहा–हे भूतेश्वर! जगतों के सृजन करने वाले और परमश्रेष्ठ ब्रह्माजी का हनन नहीं करोगे क्योंकि इन्होंने ही आपको भार्या के लिए सती को परिकल्पित किया था। हे शम्भो! यह चतुर्मुख (ब्रह्माजी) प्रजाओं के सृजन करने के लिए प्रादुर्भूत हुए थे। इनके मारे जाने पर जगत का सृजन करने वाला अन्य कोई अब प्राकृत नहीं है। फिर हम किस तरह से सृजन, पालन और संहार के कर्मों को करेंगे क्योंकि

इनके द्वारा वह मेरे आपके द्वारा ही सामञ्जस्य से ये कर्म हुआ करते हैं। एक के निहित हो जाने पर इनमें कौन हैं जो उस कर्म को करेगा। हे वृषभध्वज! इस कारण से आपके द्वारा विधाता वध करने के योग्य नहीं है।

ईश्वर ने कहा–मैं इन चतुरानन ब्रह्मा को मारकर अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करूँगा। बाकी रही प्रजा सृजन की बात सो मैं अकेला ही प्रजाओं का जो भी स्थावर और जंगम हैं सृजन कर दूँगा। मैं अन्य विधाता का सृजन कर दूँगा अथवा मैं ही अपने तेज से कर दूँगा और मेरे द्वारा निर्मित एवं सृजित विधाता सृष्टि के करने वाले होंगे जो सर्वदा मेरी अनुज्ञा से ही करेगा। वे विभो! मैं ही उसको मारकर अर्थात् ब्रह्मा का वध करके अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए हे चतुर्भुज! एक सृजन करने वाले का सृजन करूँगा। आप मुझे वारित न करिए। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–भगवान् चतुर्भुज ने गिरीश के इस वचन का श्रवण करके मन्द मुस्कान से युक्त प्रसन्न मुख वाले होते हुए फिर भी 'ऐसा मत करो'–यह कहते हुए बोले की प्रतिज्ञा की पूर्ति आत्मा में करना योग्य नहीं होता है। हे द्विजोत्तमों! ईश्वर के मुख के सामने ही विष्णु ने कहा था। इसके उपरान्त शिव ने कहा था कि मेरे शम्भु के रूप से ब्रह्मा मेरी आत्मा किस तरह से हैं। यह तो प्रत्यक्ष रूप से आगे स्थित होते हुए भिन्न ही दिखलाई दे रहे हैं। इसके अनन्तर उस समय में मुनियों के सामने भगवान् ने हँसकर गरुड़ध्वज ने महादेव को दोष देते हुए कहा था।

श्री भगवान् ने कहा–ब्रह्माजी आपसे भिन्न नहीं हैं और न शम्भु ही ब्रह्माजी से भिन्न हैं और दोनों से मैं भी भिन्न नहीं हूँ। यह हम तीनों की अभिन्नता तो सनातन अर्थात् सदा से ही चली आने वाली है। भाग अभाग स्वरूप वाले प्रधान और अप्रधान का ज्योतिर्मय का मेरा भाग आप दोनों हैं और मैं अशंक हूँ। कौन तो आप हैं, कौन मैं हूँ, कौन ब्रह्मा हैं वे तीनों ही परमात्मा मेरे ही अंश हैं। सृजन, पालन और संहार के कारण ये भिन्न होते हैं। आप अपनी आत्मा में ही संस्तव करो।

ब्रह्मा, विष्णु और शम्भु को एकत्रित हुए हृद्यत करो। जिस तरह एक ही धर्मी के शिर, ग्रीवा आदि के भेद से अंग होते हैं। हे हर! ठीक उसी भाँति मेरे एक के ही ये तीनों भाग हैं। जो ज्योति सबसे उत्तम है, जो अपने और पराये प्रकाश रूप हैं, कूटस्थ, अव्यक्त और अनन्त रूप से युक्त हैं और नित्य हैं तथा दीर्घ आदि विशेषणों से हीन तथा वह पर है उसी रीति से हम तीनों अभिन्न हैं।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–उन भगवान् के इस वचन को श्रवण करके महादेव विमोहित हो गये थे। वह अभिन्नता का ज्ञान रखते हुए भी अन्य चिन्तन से सदा ही विस्मृति होने से ही उनको अभिन्नता का ज्ञान नहीं हो रहा था। उन्होंने फिर भी गोविन्द से त्रिभेदियों की अभिन्नता को पूछा था। ब्रह्मा, विष्णु और त्र्यम्बकों का और एक का विशेषक को पूछा। इसके अनन्तर पूछे गए नारायण ने शम्भु से कहा था और तीनों देवों का अनन्यता और एकता को प्रदर्शित किया था। इसके उपरान्त विष्णु भगवान् के मुख कमल से कोश से अनन्यता का श्रवण करके तथा विष्णु-विधि और ईश के तत्व में स्वरूप को देखकर मृड (शिव) ने पुष्प, मधु से प्रकाश विधाता इसको नहीं मारा था।

तीनो देवों का अनन्यत्व

ऋषिगणों ने कहा–भगवान् जनार्दन ने तीनों देवों की जो अनन्यता को कहा था। हे द्विजोत्तम! शम्भु के लिए सदा अद्वय के श्रवण करने की इच्छा रखते हैं अथवा गरुड़ध्वज ने कैसे एकत्व को दिखाया था? हे विपेन्द्र! उसको बतलाइए। हमको बहुत ही अधिक कौतूहल है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–हे मुनिगणों! आप लोग श्रवण करिए। यह तीनों देवों की अनन्यता अर्थात् उनके एकत्व का दर्शन परम गोपनीय है। भगवान् हर ने भगवान् गोविन्द से पूछा था और बहुत ही आदर के साथ सम्भाषण करके ही पूछा था। हे मुनिश्रष्ठों! इन्होंने इनकी अभिन्नता का प्रतिपादन करने वाला यहीं कहा था। श्री भगवान् ने

कहा–यह जब भुवन वर्जिततमोमय अर्थात् तम से परिपूर्ण था। यह अप्रज्ञात, अलक्ष्य और सभी ओर से प्रसुप्त के ही तुल्य था। यहाँ पर दिन रात्रि का भाग नहीं है, न आकाश है और न काश्यपी ही है, न ज्योति है, न जल है और न वायु है अन्य किञ्चित् संस्थित नहीं है। परमब्रह्म एक ही था जो सूक्ष्म, नित्य और इन्द्रियों की पहुँच से परे हैं, यह अव्यक्त और ज्ञानरूप से द्वैत से ही परिपूर्ण है।

प्रकृति और पुरुष ये दोनों सर्व सहित नित्य हैं। हे भूतेश! काल भी स्थित है जो एक ही जगत् का कारण है। हे हर! जो एक परमब्रह्म है वह स्वरूप से परे है उसी जगत के पति के यह तीनों रूप नित्य हैं। काल नाम वाला दूसरा रूप है जो अनाद्य है और वह तो कारण है वह सब भूतों का अवच्छेद से संगत होता है। फिर वह अपने प्रकाश से भास्वद्रूप वाला प्रकाशित होता है। पहले सृष्टि की रचना करने के लिए अतुल रूप से स्वयं प्रकृति से क्षोभयुत करता हुआ था। प्रकृति के संक्षुब्ध हो जाने पर महत्तत्व की उत्पत्ति हुई थी। पीछे महत्तत्व से तीन प्रकार का अहंकार समुत्पन्न हुआ था। अहंकार के समुत्पन्न होने पर शब्द तन्मात्रा से विष्णु ने आकाश का सृजन किया था जो आकाश अनन्त है और मूर्ति से रहित है अर्थात् आकाश की कोई भी मूर्ति नहीं है। इसके उपरान्त महेश्वर ने रस तन्मात्र से जल का सृजन किया था। उस समय वह अपनी माया से निराधार ने स्वयं ही धारण किया था।

इसके अनन्तर प्रभु ने तीनों गुणों की अर्थात् सत्व, रज, तम इनकी समता ने संस्थित प्रकृति को परमेश्वर ने पुनः सृष्टि की रचना के लिए संक्षोप्ति किया था। इसके पश्चात् उस प्रकृति ने उस जल में त्रिगुण के भाग वाले निराकुल जगत् के बीच स्वरूप बीज को भली-भाँति सृजन किया था। वही निश्चत रूप से क्रम से ही वृद्ध महान् सुवर्ण का अण्ड हुआ था। उस अण्ड ने गर्भ में ही उस सम्पूर्ण जल को ग्रहण कर लिया था और अण्ड के गर्भ में जल के स्थित हो जाने पर भगवान् विष्णु ने उस अण्ड को आपकी ही माया से इस अतुल ब्रह्माण्ड को धारण कर लिया था। जल, अग्नि, वायु तथा नभ से वह अण्डक

बाहिर सब पार्श्व में और सभी ओर आछन्न हो गया था। सात सागरों के मान से जैसे नदी आदि के मान से ब्रह्माण्ड के अन्दर जल है उसी तरह से उसके अन्दर यह भगवान् विष्णु स्वयं ही ब्रह्मा के रूप के धारण करने वाले हैं। एक वर्ष तक निवास करके ही मैंने उस अण्ड का भेदन किया था।

हे महेश्वर! उससे इसमें मेरु हुआ था। उस जल से जरायु पर्वत हुए और सात समुद्र हुए था। उसके मध्व में गन्ध की तन्मात्रा से पृथ्वी समुत्पन्न हुई थी। ईश्वर के द्वारा और प्रवृत्ति से वह त्रिगुणात्मिका ज्योति की थी। पहले ही पर्वत आदि से वसुन्धरा समुत्पन्न हुई थी। ब्रह्माण्ड के खण्ड के संयोग से वह अत्यन्त दृढ़ हो गई थी। उसमें ही सब लोकों के गुरु ब्रह्माजी स्वयं संस्थित हैं। तब ही से सब लोकों के गुरु ब्रह्माजी स्वयं संस्थित हैं। जब ब्रह्माजी ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थित थे तो वह व्यक्त नहीं हुए थे। उसी समय में रूप की तन्मात्रा से भली-भाँति तेज उत्पन्न हुआ था। प्रकृति के द्वारा विनियोतिज स्पर्श तन्मात्रा से वायु उत्पन्न हुआ था जो वायु सभी ओर से समस्त प्राणियों का प्राणभूत हुआ था। अतुल जलों से, तेजों से, वायुओं से तथा नभ से उस अण्ड के अन्दर और बाहर व्याप्त था और गर्भ में गमन करने वाला था। इसके अनन्तर महेश्वर ने ब्रह्मा के शरीर को तीन भागों में विभक्त कर दिया था। हे शम्भो! स्वभाव की इच्छा के वश से त्रिगुण त्रिगुणीकृत हो गया।

उसका जो उर्ध्वभाग था चतुर्मुख और चतुर्भुज हो गया था। पद्म केशर के समान और रंग काया वाला ब्रह्म महेश्वर था। उसका जो मध्य भाग था वह नीले अंगों वाला, एक मुख से युक्त चार भुजाओं वाला था। शंख, चक्र, गदा और पद्म हाथों में लिए हुए वह काम वैष्णव था। उसका अधोभाग पाँच मुखों से समन्वित, चार भुजाओं वाला था। वह स्फटिक के तुल्य शुक्ल था और वह काम चन्द्रशेखर था। इधर-उधर ब्रह्म के कार्य में सृष्टि की शक्ति नियोजित किया था और वह लोकभूत ब्रह्म के रूप से सृष्टा हो गया था। महेश ने वैष्णव

काम में अपनी ज्ञान की शक्ति को महेश्वर में ही स्थिति अर्थात् पालन का करने वाला विष्णु हो गया था। सर्वशक्तियों के नियोग से मेरा सदा ही तद्रूपता है।

वही परमेश्वर संहार करने वाले शम्भु हो गये थे। इनका वे फिर तीनों शरीरों में अर्थात्–ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन तीनों में वह स्वयं ही प्रकाश किया करते हैं। ज्ञानरूप परमात्मा भगवान् प्रभु अनादि हैं। सृजन, पालन और संहार के करने से एक ही हैं। वही ब्रह्मा, विष्णु और महेश पृथक्-पृथक् नहीं हैं। इस प्रकार से शरीर, रूप और ज्ञान हमारा अन्तर होता है। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–इस प्रकार से शिव भगवान् ने उन अमित तेज वाले भगवान् विष्णु के वचन का श्रवण करके अतिरेक से विकसित मुख वाले होकर पुनः जनार्दन प्रभु से बोले–यदि ज्योति स्वरूप वाला और निरञ्जन महेश ही है, कौन सी माया है अथवा कौन काल है अथवा कौन प्रकृति कही जाया करती है ? कौन से पुरुष उनसे भिन्न-अभिन्न हैं यदि ऐसा है तो फिर एकता किस रीति से होती हैं ? हे गोविन्द! उनके प्रभाव को मुझे बतलाइए।

श्री भगवान् ने कहा–आप ही सदा ध्यान में समवस्थित होकर परमेश्वर को देखा करते हैं जो आत्मा में आत्मस्वरूप हैं और वह ज्योति के रूप वाला सहक्षर है। हे विभो! माया को, प्रकृति को, काल को और पुरुष को आप स्वयं जानने वाले हैं जब आप ध्यान का भोग करते हैं तो उसी के द्वारा ज्ञाता हैं। इसीलिए आप ध्यान में तत्पर हो जाइए क्योंकि इस समय में आप हमारी माया से मोहित हो रहे हैं। इसी कारण से आप निश्चय ही परम ज्योति का विस्मरण करके वनिता में निरत हो रहे हैं। अब आप कोप से युक्त हैं अतएव कोप को भूलकर हे प्रथमों के स्वामिन् ! प्रकृति के आदिरूप जिसको आप पूछ रहे हैं। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–फिर तो वहाँ पर महादेवजी ने इस परम सुनिश्चित वाक्य का श्रवण करके समस्त मुनियों के देखते हुए ये योग से युक्त होकर ध्यान में परायण हो गये थे। इस समय में बन्ध का आसाद न करके विर्निमीलित लोचनों वाले महेश्वर ने सब आत्मा का

चिन्तन किया था। परमपुरुष का चिन्तन करते हुए उनका शरीर बहुत अधिक कान्तियुक्त होकर चमक रहा था। तेज से उज्ज्वल उनको देखने के लिए उस समय में मुनिगण भी समर्थ नहीं हुए थे। उसी क्षण में जब ये शम्भु ध्यान से मुक्त हो गये तो भगवान् विष्णु की माया ने भी उनका परित्याग कर दिया था उस समय वे तप के तेज से अतीव उज्जवल एवं कान्तिमान् होकर चमक रहे थे।

जो-जो भी गण उस अवसर पर सेवा करने के लिए शंकर के समीप में स्थित रहते थे वे सब भी उन शंकर अथवा दिवाकर के देखने में समर्थ नहीं थे अर्थात् उन्हें देख नहीं सकते थे। उस काल में स्वयं ही भगवानृ विष्णु समाधि में मन लगाने वाले शिव के शरीर के अन्दर ज्योति के स्वरूप से प्रविष्ट हुए थे। उन शंकर ने जठर में प्रवेश करके जैसे पहले सृष्टि का क्रम था ठीक उसी भाँति स्वयं अव्यय नारायण ने दिखा दिया था। वह न तो स्थूल है और न सूक्ष्म ही हैं, न विशेषण के गोचर हैं, वह नित्य आनन्दरूप हैं, निरानन्दन हैं, एक हैं, शुद्ध हैं और इन्द्रियों की पहुँच के बाहर हैं वह अस्पृश्य हैं और सब का दृष्टा. अर्थात् देखने वाला है, वह निर्गुण है, परमपद हैं, परमात्मा में गमन करने वाला आनन्द हैं और जगत् के कारण का भी कारण हैं। सबसे प्रथम शम्भु ने तत्स्वरूपी आत्मा को देखा था। वह पर प्रविष्ट हुए मन में बाहर के ज्ञान से विवर्जित उसी के रूप प्रकृति को जो सृष्टि की रचना के लिए भिन्नता को प्राप्त हुई थी। उसी के समीप एक उसको पृथक् भूत हुई की भांति देखा था।

फिर इनमें जिस रीति से वास कर रहे पुरुषों को देखा था। हे द्विजसत्तमों! जैसे स्थूल अग्नि के कण से निरन्तर होवें। वह ही काल के रूप से बारम्बार भासित होता है। सृष्टि, पालन और अहंकार के योगों का अवच्छेद से कारण है। प्रकृति और पुरुष ही काल भी जो अभिन्न थे और सर्ग के लिए भिन्नता को प्राप्त हुए भी समान थे। इन सबको पृथक भूत और अभिन्न चन्द्रशेखर प्रभु ने देखा था। एक ही ब्रह्म है जो द्वैत से रहित और यहाँ पर कुछ भी नानारूप वाला नहीं है।

वह ही प्रधान रूप से और काल के स्वरूप से भासमान होता है तथा पुरुष के रूप में संसार के लिए प्रवृत्त हुआ करता है।

भोग करने के लिए निरन्तर वह प्राणधारियों के शरीर में प्रवत्तित होता है। वह ही माया या प्रकृति हैं जो शंकर भगवान् को मोहित करती है। वह ही हरि को और ब्रह्माजी को मोहयुक्त करती हैं। ठीक उसी भाँति से आप अन्य जन्म वाले हैं। माया के नाम वाली प्रकृति जात हुई और जन्तु को सम्मोहित भी किया करती है। वह सदा स्त्री के स्वरूप से लक्ष्मीभूता हुई हरि भगवान् की प्रिया है। वह ही सावित्री, रति, सन्ध्या, सती और वारिणी है। वह देवी स्वयं बुद्धि के रूप वाली है जो चण्डिका इन नाम से गायन की जाया करती है। यह ध्यान के मार्ग में गमन किए हुए भगवान् हर ने शीघ्र स्वयं ही देखा था। महत्तत्व आदि के भेद से फिर सृष्टि के क्रम को स्वयं देखा था। भगवान् ने काल-प्रकृति तथा पुरुषों को दिखलाकर हे द्विजोत्तमों! उसी प्रकार से उनके शरीर को अन्य दिखलाया था।

हर कोप शमन वर्णन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर भगवान् ने शम्भु के लिए ब्रह्माण्ड का संस्थान दिखलाया था जिस प्रकार से पहले ब्रह्माण्ड जो जल की राशि में स्थित होता हुआ बढ़ा था। उसके मध्य में पद्मगर्भ की आभा वाले जगत् के पति ब्रह्मा को जो ज्योति के रूप वाला प्रकाश के लिए और सृष्टि की रचना करने के लिए पृथक्गत है और शरीरधारी को देखा था। फिर ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत चार भुजाओं से समन्वित ज्योतियों से प्रकाशित कमल पर आसन वाले को देखा था और वहीं पर उन्होंने तीन भागों में स्थित वपु वाले ब्रह्मा को देखा था। जो ऊर्ध्व, मध्य और अन्त भागों के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और शिव के स्वरूप वाला था। जिस रीति से वायु का ऊर्ध्व भाग उस समय में ब्रह्मत्व को प्राप्त हो गया था जो मध्य भाग था। वह एक ही शरीर तीन भागों में बार-बार हर भगवान् ने अपने गर्भ में इस सम्पूर्ण जगत् को

उसी भाँति देखा था। कदाचित् वैष्णवकाय अर्थात् विष्णु का शरीर ब्रह्मकाय में अर्थात् ब्रह्मा के शरीर में लय हो जाता है। किसी समय में ब्रह्म वैष्णव में तथा शाम्भव वैष्णवकाय लीन हो जाता है। तात्पर्य यह है कि कभी ब्रह्मा का शरीर विष्णु के शरीर में और शम्भु के शरीर में विष्णु का शरीर लय को प्राप्त हो जाया करता है।

शम्भु का शरीर विष्णु के वपु में अथवा ब्रह्मा का वपु शम्भु के शरीर में लीनता को प्राप्त होता हुआ तथा बार-बार एकता को प्राप्त होने वाला शम्भु भगवान् ने देखा था। वामदेव की भिन्नता को अप्राप्त पृथक्गत परमात्मा में गमन करते हुए अर्थात् लीनता को प्राप्त होते हुए उसके वपु को स्वयं देखा था। शम्भु ने उसके मध्य में जल में वितत अर्थात् विस्तृत पृथ्वी को देखा था। जो महान् पर्वतों के संघातों से विरल है। फिर उन्होंने आदि से सर्ग की रचना करते हुए ब्रह्माजी को देखा था तथा अपने आपको पृथक्भूत और गरुड़ पर आसन वाले विष्णु को देखा था। वहाँ पर ही प्रजापति दक्ष को और उसी भाँति अपने गणों को, प्ररीचि आदि दशों को, वैरिणी को, सती, सन्ध्या, रति, कन्दर्प, वसन्त के सहित शृंगार, हावों को, भावों को, मारों को, ऋषियों को, देवों को, गरुड़ गणों को देखा था। मेघों को, चन्द्र, सूर्य, वृक्षगण, वल्ली और तृण, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, राक्षस और किन्नरों को देखा था।

मनुष्यों को, भुजंगों को, ग्राह, मत्स्य, कच्छप, उल्का, निर्घात, केतुकों को, कृमि, कीट और पतंगों को देखा था। वहाँ पर किसी वनिता को देखा था जो द्वन्द्व भाव को कर रही थी। किसी को उत्पन्न, उत्पत्ति को प्राप्त होते हुए विपद्ग्रस्त को देखा था। कुछ लोगों को हास-विलास करते हुए और कुछ को विलाप करते हुए तथा कुछ दौड़ लगाते हुओं को परमेश्वर ने देखा था जो कि शम्भु की ओर ही भाग रहे थे। कुछ लोग दिव्य अंलकारों से युक्त थे, कुछ माला और चन्दन से चर्चित हुए थे, कुछ लोग वीक्षा करते थे और कुछ पुनः शम्भु के साथ क्रीड़ित थे। कुछ लोग स्तुति कर रहे थे, कुछ शम्भु का स्तवन

करते हुए-विष्णु और ब्रह्मा का स्तवन करने वाले थे। उनके द्वारा कुछ मुनि और तपस्वी गण भी देखे गये थे। कुछ लोग नदी के तट पर तपोवन में तपस्या करते हुए देखे गये थे। कुछ लोग स्वाध्याय तथा वेदों में रत देखे गये थे और कुछ पढ़ाते हुए देखे गये थे। वहीं पर सात सागर, नदियाँ और देव सरोवर देखे गए थे। वही पर यह पर्वत पर स्थित थे, ऐसा स्वयं शम्भु के द्वारा देखा गया था।

यह महालक्ष्मी के रूप से भगवान् हरि को पर्याप्त रूप से मोहित किया करती है। सती के स्वरूप वाली उसी भाँति आत्मा को अर्थात् अपने आप को मोहित करती हुई को शंकर ने देखा था। वे स्वयं सती के साथ मेरु पर्वत कैलाश में रमण करते थे तथा मन्दिर में देव विपिन में जो शृंगार रस से सेवित था। वह देवी सती के रूप का परित्याग करके हिमवान् की सुता होकर समुत्पन्न हुई थी। जिस प्रकार से पुनः उसने उन सती को प्राप्त किया था और जैसे अन्धक मारा गया था। जैसे कार्तिकेय समुत्पन्न हुए और जिस तरह से तारक नाम वाले का हनन किया था यह सब विस्तारपूर्वक भली-भाँति वृषभध्वज ने देखा था। जिस रीति से नरसिंह के स्वरूप धारण करने वाले के द्वारा हिरण्यकशिपु मारा गया था और जिस प्रकार से हिरण्याक्ष और कालनेमि नष्ट हुआ था तथा जैसे पहले किया हुआ दानवों के समुदाय के साथ विष्णु भगवान् के द्वारा युद्ध हुआ था तथा जो-जो भी वहाँ पर निहित हुए थे यह सभी कुछ भगवान् हर ने देखा था। जगत् के प्रपञ्चरूप ब्रह्मा आदि नक्षत्र ग्रह और मनुष्य, सिद्ध और विद्याधर आदि को पृथक-पृथक देख-देखकर ईश्वर शम्भु ने उन सबका संहार करते अपने आप को देखा था। इन्होंने फिर संहार के अन्त में ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरी को देखा था। यह सम्पूर्ण चर और अचरों से समन्वित जगत् शून्य हो गया था। इस समस्त शून्य जगत् में ब्रह्मा, विष्णु के शरीर में गमन करने वाले तथा शम्भु लीन होते हुए उसी के शरीर में प्रवेश कर गये थे। इन्होंने एक ही अव्यक्त रूप वाले विष्णु को देखा था और इन्होंने अन्य कुछ भी नहीं देखा था जो उस समय में विष्णु के बिना

होवें। इसके अनन्तर विष्णु भगवान् को देखा गया था। परमात्मा में लय को प्राप्त, भासमान पर तत्व, सनातन ज्योति के रूप वाले परमतत्व देखे गये थे। इसके अनन्तर ज्ञान से परिपूर्ण, नित्य, आनन्दमय, ब्रह्म से पर, केवल ज्ञान के द्वारा ही जानने के योग्य को देखा था और अन्य कुछ भी नहीं देखा था। परमात्मा में उस जगत् का एकत्व और पृथक्त्व अपने शरीर के अन्दर मर्ग, स्थित और संयमों को देखा था।

प्रकाशरूप, शान्त, नित्य और इन्द्रियों की पहुँच से परे परमात्मा को देखा था कि ब्रह्मा एक ही पर है। जो अद्वय द्वैत से रहित है। इससे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं देखा था। कौन भगवान् विष्णु है, कौन ब्रह्मा है अथवा क्या यह जगत् है ? शम्भु के द्वारा परमात्मा का यह भेद ग्रहण नहीं किया गया था। इस प्रकार से देखते हुए उनके शरीर के सुन्दर से बाहर माया आदि निर्गत हुए थे और वृषभध्वज (शिव) में प्रवेश कर गए थे। जनार्दन प्रभु ने अनन्यत्व और पृथक्त्व दिखलाकर शम्भु के लिए उनके शरीर से शीघ्र ही फिर बाहर हो गये थे। इसके उपरान्त समाधि से परित्याग करने वाले चलित आत्मा से युक्त शिव का मन सती की ओर गया था जो शिवमाया से मोहित हो गये थे। हे द्विजोत्तमों! फिर भगवान् हर ने दाक्षायणी के मनोहर और विकसित कमल के आकार वाले मुख को देखा था। इसके आगे दक्ष, मारीचि आदि मुनियों को, अपने गणों को, कमलासन (ब्रह्मा) को और भगवान् विष्णु को वहाँ पर देखकर भगवान् शंकर अत्यन्त विस्मित हो गये थे। इसके अनन्तर विस्मय में स्मित (मन्द मुस्कराहट) से प्रफुल्लित मुख से संयुत वृषभध्वज महादेव से भगवान् जनार्दन ने कहा।

श्री भगवान् ने कहा—हे शंकर! जो-जो भी आपने एकत्व में और भिन्नता में देखा और आपने तीनों देवों को स्वरूप जान लिया है। आपने अपने अन्तर में प्रकृति, पुरुष, काल और माया को अच्छी तरह से जान लिया है। हे महादेव! वे फिर किस प्रकार वाले हैं ? ब्रह्म एक ही हैं और वह शान्त, नित्य, परम महत् हैं। वह किस तरह से भिन्नता को प्राप्त हुआ और कैसा है यह आपने देख लिया है। मार्कण्डेय मुनि

ने कहा– इस रीति से भगवान् वृषभध्वज जब भगवान् विष्णु के द्वारा पूजे गये थे हे द्विजोतमों! हर ने हरि के लिए यह तथ्य वचन कहा था।

ईश्वर ने कहा–एक शिव परमशान्त, अनन्त, अच्युत ब्रह्म हैं और उनसे अन्य ऐसा कुछ भी नहीं है उनसे अभिन्न सम्पूर्ण जगत् हरि के कला आदि रूप से सृष्टि की रचना का हेतु होता है। वह समस्त प्राणियों को प्रभव है और निरञ्जन है और हम सब उसके ही सदा अंश स्वरूप वाले हैं। सृष्टि, स्थिति (पालन) और संयमन (संहार) उसके द्वारा कथित भेद से तीनों रूप शोभित होते हैं। न तो मैं, न आप और न हिरण्यगर्भ, न कालरूप, न प्रकृति और उसकी प्रेरणा करने के लिए समर्थ है। यहाँ पर कुछ रूप के बिना भी उसका सत् भी है। श्री भगवान् ने कहा–हे वृषभध्वज! यह तत्व आपने कहा और जान लिया है। हम ब्रह्मा, विष्णु और पिनाकी (शिव) उसके अंशभूत ही हैं। इस कारण आपके द्वारा ब्रह्मा वध के योग्य नहीं हैं। यदि आपको एकता विदित है जो कि हे शम्भो! ब्रह्मा, विष्णु और पिनाकधारी शिव की होती है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–अपरिमित तेज के धारण करने वाले भगवान् विष्णु के इस वचन का श्रवण करके महादेव जी ने सबकी एक स्वरूपता को देखकर ब्रह्मा का हनन नहीं किया। भगवान् विष्णु ने जिस रीति से एकता को आदिष्ट किया था वह सब मैंने आपको बतला दिया है।

शिव सती बिहार वर्णन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इसके अनन्तर मेघों के गर्जन करने पर श्री महादेवजी सती के पति के विष्णु भगवान् प्रभृति सबको विदा करके अथवा त्याग करके वे हिमवान पर्वत पर राज पर चले गए थे। उस परमाधिक आमोद की शोभा वाली सती को अपने अत्युन्नत वृषभ पर समारोपित कराके हिमालय के प्रस्थ को गमन किया था जिसमें परम रम्य कुञ्जों का समुदाय था। इसके उपरान्त वह सुन्दर दन्त-पंक्ति वाली चारुहार से समन्वित सती भगवान् शंकर के समीप शोभायमान

हुई थी। वृषभ पर स्थित भी वह चन्द्र के मध्य में कलिका के समान ही थी। वे सब ब्रह्मा आदिक और मरीचि आदि मानस पुत्र, दक्ष प्रजापति भी सभी सुर और असुर परम प्रसन्न हुए थे अर्थात् उस अवसर पर सभी को अत्यन्त हर्ष हुआ था। जो सब भगवान् शंकर के साथ में गमन कर रहे थे। उनमें कुछ तो शंखों को बजा रहे थे और कुछ सुमंगल करने वाले तालों का वादन कर रहे थे। कुछ हास्य ही कर रहे थे। इसी रीति से सबने वृषभध्वज का अनुगमन किया था अर्थात् शिव के पीछे-पीछे गये थे फिर ब्रह्मा आदि भी सब शम्भु के द्वारा विदा कर दिए गए थे। वे सब परमाधिक आनन्द से कुछ दूर तक शिव की पीछे-पीछे गये थे। इसके उपरान्त ब्रह्मा आदि और मानस पुत्रों ने शम्भु के साथ सम्भाषण करके आशुगमन करने वाले रथों के द्वारा अपने-अपने आश्रमों को चले गये थे। समस्त देवगण, सिद्ध और उसी भाँति अप्सराओं के समुदाय और जो-जो भी वहाँ पर यक्ष, विद्याधर आदि समागत हुए थे वे सभी भगवान् हर के द्वारा बिना किए हुए अपने निवास स्थानों को चले गए थे तथा वृषभध्वज के द्वारा ग्रहण करने पर सभी आमोद से समन्वित हुए थे। इसके अनन्तर भगवान् शिव अपने गणों के सहित आनन्द देने वाले संस्थान पर पहुँचकर जो कि कैलाश गिरि के नाम वाला था। वहाँ पर शिव ने अपनी प्रिया को वृषभ ने नीचे उतार लिया था। फिर विरूपाक्ष प्रभु ने इस दाक्षायणी सती की प्राप्ति करके अपने गणों को जो नन्दी आदिक थे उस गिरि की कन्दरा से विदा कर दिया था। भगवान् शम्भु ने नन्दी आदि से बहुत ही मधुर वाणी में उन सबसे कहा था कि यहाँ पर जिस समय में भी मैं आप सबका स्मरण करूँ उसी समय में स्मरण से चलमानस वाले आप लोग मेरे समीप में तब-तब ही आगमन करेंगे। इस प्रकार से वामदेव के द्वारा कथन करने पर वे नन्दी भैरव आदिक सब हिमवान् गिरि पर चल रहे थे। उन सबके जाने पर भगवान् ईश्वर भी उस सती के साथ मोहित हो गये थे। हर भी एकान्त में प्रतिदिन उस दाक्षायणी के साथ चिरकाल पर्यन्त बहुत ही अधिक रमण करने वाले हो गये थे।

किसी समय में वन में स्वाभाविक रूप से समुत्पन्न हुए पुरुषों का समाहरण करके उनकी एक अतीव मन को हरण करने वाली सुन्दर माला की रचना करके उन्होंने सती के हार के स्थान में नियोजित किया था। किसी समय दर्पण में अपने मुख का अवलोकन करने वाली सती का अनुगमन करके भगवान् शम्भु भी अपने मुख को देखा करते थे। किसी समय उस सती के कुन्तलों को उल्लसित करके उल्लास में आए हुए शिव बाँधा करते थे तथा किसी प्रकार मोचन किया करते थे और बराबर उन केशों को काढ़ा भी करते थे अर्थात् कंघी भी काढ़ते थे। अनुराग में निमग्न हर इस सती के स्वाभाविक लालिमा लिए हुए दोनों चरणों को उज्ज्वल पावक के द्वारा निसर्ग रक्त किया करते थे। जो दूसरों के आगे भी बार-बार ऊँचे स्वर के कथन करने के योग्य बात होती थी उसको भी भगवान् हर सती के मुख को स्पर्श करने के विचार में उनके कान में कहा करते थे। विशेष दूर भी न जाकर यह शम्भु किसी समय में प्रयत्नपूर्वक समागत होकर पीछे के भाग में आकर अन्य मन वाली इस सती की आँखों को बन्द कर दिया करते थे। वृषभध्वज अपनी माया से वहाँ पर ही अन्तर्धान होकर उस सती का आलिंगन किया करते थे। तब वह भय से चकित होकर अधिक व्याकुल हो जाया करती थी।

उन हिमालय पर्वत में वृषभध्वज के प्रवेश किए जाने पर कामदेव भी अपने मित्र वसन्त के तथा अपनी पत्नी रति के साथ वहाँ पर चला गया था। उस कामदेव के प्रविष्ट हो जाने पर वसन्त ने भगवान् शंकर के समीप में अपनी शोभा का वृक्षों में, जल में और भूमि में विस्तार कर दिया था। वहाँ पर सभी वृक्ष फूलों से संयुत होकर पुष्पित हो गए थे और अन्य लतायें भी पुष्पित हो गई थीं सब सरोवरों के जल खिले हुए कमलों से युक्त हो गये थे तथा उन कमलों पर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे। वहाँ पर सुरति के प्रविष्ट हो जाने पर मलय की ओर से आने वाली वायु वहन कर रही थी। सुगन्धित पुष्पों के सहित योग को जाने से सुरभियाँ मोहित हो गई थीं। उस समय में उस सुरभि ने मुनियों के

भी मन का प्रमथन कर दिया था। चक्र के समूह के ही घृत के समान कृति कामदेव ने सार का समुद्धरण किया था। पलाश सन्ध्या काल में आधे चन्द्रमा के सदृश शोभित हुए थे। पुष्प कामदेव के अस्त्र के ही समान सदा प्रमोद के लिए हो गये थे। सरोवरों में कमल के पुष्प शोभित हो रहे थे।

नागकेशर के वृक्ष स्वर्ण वर्ण वाले पुष्पों के शंकर से समीप में मदन (कामदेव) के केतु की आभा वाले परम सुन्दर शोभित हो रहे थे। चम्पक के वृक्ष बार-बार हेम पुष्पत्व को अर्थात् सुनहले पुष्पों को प्रकट करते हुए विकसित प्रचुर पुष्पों से भली-भाँति शोभायमान हुए थे। विकसित हुए अर्थात् खिले हुए पाटला के पुष्पों से दिशायें पाटलांशु हो गई थीं। जिस किसी तरह से वे पाटलनाभ वाले वृक्ष पुष्पित हो रहे थे। अवंग वल्ली की सुरभि गन्ध के द्वारा वायु को सुरभित करके कामीजनों में पूर्व चित्तों को बहुत ही अधिक सम्मोहित करती है। वासन्ती से वासित वल्वज शोभित हो रहे थे उसकी गन्ध के लालची भ्रमर मनोहर रति मित्र थे। सुन्दर पावक के वर्चस्व वाले आम्र वृक्षों के शिखर कामदेव के वाणों के समूह से वंदनावृत होते हुए शोभायुक्त थे। सरोवर तथा जलाशयों का जल फूले हुए कमलों के द्वारा शोभित हुए थे जो अव्यक्त ज्योति के उद्गम से मुनिगणों के चित्तों के ही तुल्य थे।

सूर्य की किरणों के संगम से तुषार क्षय को प्राप्त हो गये थे। उस समय में उन तुषारों का क्षय विज्ञानशाली पुरुषों के हृदय से ममत्व की ही भाँति हुआ था। उस समय में प्रतिदिन कोयल निःशंक होकर अपनी मधुर ध्वनि का विचार कर रही थी। जो पुष्पों में बहुत ही अधिक पुष्पों की ज्या (धनुष की डोरी) के शब्द की ही भाँति था। वहाँ पर भ्रमर वनों के अन्तर्गत पुष्पों में गमन करने वाले भ्रमरकान्ता की लीला को भूख वाले कामदेव रूपी व्याघ्र की ध्वनि की ही भाँति गुँजन कर रहे थे। चन्द्र तुषार की भाँति था और भानु सकल कलाओं वाला नहीं था। यह क्रम से स्वजनों के मोह के लिए कुशलतापूर्वक इन कलाओं

को धारण करता था। उस समय में चन्द्रमा के साथ प्रसन्न और तुषार से रहित विभावरी सुमनोहर कामिनियाँ प्रिय के साथ की भाँति की हो गयी थीं। उस समय महादेव उत्तम धरा में उत्तम सती के साथ बहुत समय तक होकर रमण करते रहे।

हिमाद्रि निवास गमन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा--इसके अनन्तर किसी समय में दक्ष की पुत्री सती ने जलदों के आगम में अद्रि (पर्वत) शिखर के प्रस्थ में संस्थित वृषभध्वज से बोली–मेघों के समागम का समय प्राप्त हो गया है। यह काल परम दुःसह होता है। अनेक वर्णों वाले मेघों के समुदाय से आकाश और दिशायें सब स्थगित अर्थात् आछन्न हो गये हैं। अत्यन्त वेग वाली वायु हृदय को विदीर्ण करती हुई वहन करती है। विद्युत की पताका वाले मेघों की ऊँची और तीव्र गर्जना से जो मेघधारा सार को मोचन कर रहे हैं, इससे किसके मन क्षुब्ध नहीं होते हैं अर्थात् सभी के मन में लोभ उत्पन्न हो जाया करता है। इस समय में सूर्य दिखलाई नहीं देता है और मेघों से चन्द्रमा भी समाच्छन्न हो गया था और इस समय में दिन भी रात्रि की भाँति प्रतीत होता है। यह समय विरही जनों को बहुत ही व्यथा करने वाला है। ये मेघ एक जगह में स्थित नहीं रहा करते हैं। ये गर्जन की ध्वनि करते हुए पवन से चलायमान हो जाते हैं। हे शंकर! ये ऐसे प्रतीत होते हैं मानों लोगों के माथे पर गिर रहे हों। वायु से हत हुए वृक्ष आकाश में नृत्य-सा करते हुए दिखलाई दिया करते हैं। हे हर! ये कामुक पुरुषों के ईक्षित हैं और भीरुओं को त्राण देने वाले हैं। स्निग्ध नीलअञ्जन के समान श्याम मेघों के ओघ के पीछे से बलकाओं की पंक्ति यमुना के धृष्ट फेन के ही समान शोभा देती है।

यह गत कालिका क्षण-क्षण में चञ्चल है ऐसी दिखलाई दिया करती है। जैसे सागर में सन्दीप्त बड़वा मुख पावक होता है। मन्दिर के प्रांगणों में भी शस्य पुरुढ़ होते हैं। हे बिरूपाक्ष! अन्य स्थान मे मैं

शास्त्रों की उद्भूति (उत्पत्ति) को क्या बतलाऊँ। श्यामल और राजत कक्षों से यह हिमवान् विषद हो रहा है जिस तरह से मन्दिर अचल के वृक्षों के समुदाय के पत्रों से क्षीर सागर होता है। वह कुसुमों की श्री इसके कुटज का सेवन करती है। मयूर मेघों की ध्वनि से बार-बार परम हर्षित होते हैं और वे निरन्तर वृष्टि की सूचना देने वाले हर एक वन में अपनी वाणी को बोला करते हैं। हे हर! अत्यन्त घोर काले मेघों की ओर मुख किए हुए चातकों की ध्वनि का आप श्रवण करिए जो कि वृष्टि की समीपता को सूचना देने वाला है।

इस समय में आकाश में इन्द्र के धनुष ने अपना स्थान बना लिया है अर्थात् इन्द्रधनुष दिखलाई देता है। जिस प्रकार से धारा के शरों से ताप का भेदन करने के लिए मानों यह उद्गत हुआ हो। मेघों के अन्याय को देखिए जो कि कारकों अर्थात् ओलों का उत्कर उसी भाँति चातक और अनुगत मयूर को ताड़ित करता रहता है।

शिखी (मयूर) और सारंग का पराभव मित्र से भी देखकर हे गिरीश! हँस बहुत दूर देश में स्थित मानसरोवर को गमन किया करते हैं। इस विषय काल में कण्टक और कोरक अपने घोसलों की रचना किया करते हैं। आप बिना गेह के किस प्रकार से शान्ति को प्राप्त करते हैं। हे पिनाक धनुष के धारण करने वाले! वह विशाल मेघों से उठी हुई भीति (डर) मुझको बाधा कर रही है। अतएव मेरे कहने से आप शीघ्र ही निवास स्थान के लिए यत्न करिए। हे वृषभध्वज! कैलास में अथवा हिमालय गिरि में या भूमि में आप अपने योग्य निवास स्थान को बनाइए। उस दाक्षायणी के द्वारा एक बार ही इस प्रकार से कहे हुए शम्भु ने उस समय में थोड़ा हास किया था जो शम्भु अपने मस्तक में स्थित चन्द्रमा की रश्मियों से षोषित आनन (मुख) वाले थे। इसके अनन्तर महान् आत्मा वाले सभी तत्वों के ज्ञान से सुसम्पन्न मन्द मुस्कराहट से अपने होठों के सम्पुट को भेद न करने वाले शिव परमेश्वरी देवी को तुष्ट करते हुए बोले थे।

ईश्वर ने कहा—हे मनोहरे! आपकी प्रीति के लिए जहाँ पर भी मुझे

निवास करना चाहिए, हे मेरी प्यारी! वहाँ पर मेघ कभी भी गमन करने वाले नहीं होंगे। इस महीभृत अंर्थात् पर्वत के नितम्ब के समीप पर्यन्त ही मेघ सञ्चरण किया करते हैं। हे मनोहर! वर्षा ऋतु में भी इस प्रालेय के धाम गिरि के अन्दर सदा मेघों की गति वहीं तक है। उसी भाँति कैलास की जहाँ तक मेखला है वहीं तक मेघ सञ्चरण करते हैं। उसके ऊपर वे कभी भी गमन नहीं किया करते हैं। सुमेरु के वारिधि के ऊपर बलाहक (मेघ) नहीं जाया करते हैं। पुष्कर और आवर्तक प्रभृति उसके जानुओं के मूल तक ही रहते हैं। इन गिरीन्द्रों पर जिसके भी ऊपर आपकी इच्छा हो, हे प्रिये! जहाँ पर भी आपका मन हो वही आप मुझे ही बतला दीजिए। सदा हिमालय गिरि में स्वेच्छापूर्वक विहार के द्वारा आपके कौतुक उपदेय हैं। जहाँ पर सुवर्ण पक्षों के द्वारा अनिलों के वृन्दों से और मधुर ध्वनि वाले पक्षियों से तुम्हारे कौतुक होंगे।

सिद्धों की सिद्धांगनायें आपके साथ सखिता की अर्थात् सनातनी सखी की भावना की इच्छा करने वाली होती हुई स्वेच्छापूर्वक विहारों के द्वारा मणिकुहिस पर्वत पर कौतुक के सहित आपका उपहार करती हुई फल आदि दोनों के सहित वहाँ पर आयेंगी। जो देवों की कन्यायें हैं और जो गिरि की कन्यायें हैं, जो तुरंगमुखी नागों की कन्यायें हैं वे सभी निरन्तर आपकी सहायता करती हुई अनुमोद के विभ्रमों के द्वारा समाचारण करेंगी। आपका वह अतुल रूप है अर्थात् ऐसा है जिसकी तुलना न हो। आपका मुख परम सुन्दर है। अंगला अपने शरीर की कान्ति के संघ को देखकर अपने वपु में और रूप गुच्छों में खेला करेंगी इससे निर्निमेष ईक्षण से चारुरूप वाली है। जो मेनका अप्सरा पर्वतराज की जाया के रूप और गुणों से तीनों लोकों में ख्याति वाली हुई थी वह भी सूचनाओं से आपके मन का अनुमोदन नित्य किया करेगी। गिरिराज के द्वारा वन्दना करने के योग्य पुरन्ध्रि वर्गों के साथ उदाररूपा प्रीति का विस्तार करती हुई उनके द्वारा सदा अपने कुल के लिए उचित गुणों के समुदायों से प्रीति में समन्वित प्रतिदिन आपकी शिक्षा करने के योग्य है। हे प्रिये! अतीव विचित्र कोमलों के सन्तान

और मोद से कुञ्जों के समुदाय से समावृत होने वाले और जहाँ पर और सदा ही वसन्त का प्रभाव विद्यमान रहता है क्या वहाँ आप गमन करना चाहती हैं ? समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाले वृक्षों से और कल्पसंज्ञा वाले शार्दूलों से जो संच्छन्न है वहाँ पर जिसके कुसुमों का उपयोग करोगी।

हे महाभागो! जहाँ परश्वापद गण परम प्रशान्त हैं जो मुनि और यतियों से सेवित हैं अनेक प्रकार के मृग गणों से समावृत हैं ऐसा देवों का आलय है। स्फटिक के वर्ण से युक्त विप्र आदि से और रजत चाँदी के निर्मित से विराजाजित हैं जो मानस सरोवर के वर्गों से दोनों ओर परिशोभा वाला है। जो हिरण्मय रत्नों के नाल वाले पंकजों तथा मुकुलों से आवृत्त हैं तथा शिशुमार, शंख, कच्छप, मकर, झपों के द्वारा निमेषित और मञ्जुल नीलोत्पल आदि से समन्वित है। देवी के सैकड़ों स्नानों से सक्त सम्पूर्ण वाले कुंकुमों से युक्त, विचित्र मालाओं के गन्ध से युक्त, जनों से अपूर्ण एवं स्वच्छ कान्ति वाले शाद्वलों से, तरुओं से जो तीर पर स्थित थे उनसे उपशोभित, मानों नृत्य करते हुए शास्त्रों के समुदाय से अपने सम्भव का व्यञ्जन करते हुए कादम्ब, सारस, मत्त चक्रांगों के ग्राम (समुदाय) से शोभित मधुर ध्वनि करने वाले, मोद को करने वाले भ्रमर आदि से युक्त–इन्द्र, यम, कुबेर, वरुण की पुरियों से शोभान्वित देवों का आलय मेरु को ज़ो उन्नत है जो रम्भा, शची, मेनका आदि रम्भोरुगण सेवित है। क्या आप सबके सारभूत महागिरि की इच्छा करती हैं ?

वहाँ पर सैकड़ों देवियों से समन्वित अप्सरागणों के सहित सेवा की हुई शची (इन्द्राणी) आपके लिए समुचित सहायता करेगी। मेरे कैलास अंचलों के शिरोमणि को जो सत्पुरुषों का आश्रय और वित्तेश कुबेर की पुरी से परिराजित हैं क्या ऐसे स्थान के प्राप्त करने की इच्छा करती हो ? हे सुन्दरि! गंगाजल से ओघ से प्रयत, पूर्ण चन्द्रमा की प्रभा के समान प्रभा से संयुत, दरियों में और सानुओं में (शिखरों में) सदा यक्ष की कन्याओं से सम्मोहित, अनेक मृग गणों से सुसेवित, सैकड़ों

पद्माकारों से समावृत जो सभी गुणगणों से सुमेरु की तरह ही तुल्य है। इन स्थानों में जहाँ पर भी आपके अन्तःकरण की स्पृहा हो उसे शीघ्र ही मुझको बतला दो वहाँ पर ही मैं आपका निवास बना दूँगा।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस प्रकार से भगवान् शंकर के द्वारा कहने पर उस अवसर पर दाक्षायणी ने धीरे से अपनी इच्छा को प्रकाशित करने वाला वह वचन कहा था। सती ने कहा—इस हिमालय में ही अपना निवास आपके साथ चाहती हूँ। आप शीघ्र ही इस महागिरि में ही निवास करिये। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर उस देवी सती के वाक्य का श्रवण करके भगवान् शंकर परमाधिक प्रसन्न हुए और उस दाक्षायणी के साथ जो हिमवान् का शिखर था उस पर चले गए थे। वह हिमालय का शिखर सिद्धों की अंगनाओं से युक्त था और मेघ एवं पक्षियों के लिए अगम्य था अर्थात् वहाँ पर मेघ तथा पक्षी भी नहीं जा सकते थे। उसके परमोन्नत तथा मरीचवन से सुशोभित शिखर पर उन्होंने गमन किया था।

सती के देह त्याग वर्णन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—वह कनकों के रूपों से रत्न सुशोभित शिखर था। वह शिखर सूर्य के समान उन्नत था। उस शिखर को सती सखा शिव ने प्राप्त किया था। उसमें जो स्फटिक पाषाण था और शाद्वल एवं द्रुमों से राजित था, विचित्र पुष्पों की लताओं से तथा सरोवरों से संयुत था, वहाँ प्रफुल्लित वृक्षों की शाखाओं की टहनियों पर गुञ्जार करते हुए भ्रमरों के द्वारा परम शोभा हो रही थी। विकसित कमलों के द्वारा तथा नील कमलों के समुदाय के द्वारा चक्रवाकों समूहों से और कादम्ब से शोभि था। प्रमत्त सारस, क्रौंच और नीलकण्ठ इनसे जो शब्दायमान था एवं कोकिलों की मधुर ध्वनियों से तथा मृगों से सेवित था। तुरंग के समान मुखों वाले सिद्धों, अप्सराओं और गुह्यकों से, विद्याधरों, देवियों तथा किन्नरों के द्वारा विहार किया हुआ था। पर्वतीय पुरन्ध्रियों से और कन्याओं से वह समन्वित था। विपञ्ची

तन्त्रिका मन्द मृदंग, पट्टह की ध्वनियों से और नृत्य करती हुई कौतुक से समुत्थित अप्सराओं के द्वारा सुशोभित था। दैवी-दिव्य और गन्ध युक्त लताओं से समावृत्त, ऊर्ध्व प्रफुल्ल कुसुमों से तथा निकुन्जों से शोभायमान स्थान था। उसमें वृषभध्वज ने इस प्रकार से समन्वित सुशोभन में सती के साथ चिरकाल पर्यन्त रमण किया था। उस स्वर्ग के सदृश स्थान में भगवान् शंकर ने दिव्यमान से दश हजार वर्ष तक आनन्द सहित सती देवी के साथ रमण किया था। पहले वह शंकर भगवान् किसी समय उस स्थान से कैलाश पर चले जाया करते हैं। किसी समय देवों और देवियों से समावृत मेरु पर्वत के शिखर चले जाते हैं। उसी भाँति दिक्पालों के उद्यान में, वनों में और वसुधा तल में जा-जाकर पुनः वहाँ पर सती को साथ में लिए हुए उनसे रमण किया करते थे। उन्होंने रात दिन को नहीं जाना था, न तो वे ब्रह्मा का चिन्तन करते थे, न तप और शम का ही समाचरण किया करते थे। सती के अन्दर समाहित मन वाले शम्भु ने केवल प्रीति ही की थी। सती सभी ओर केवल एक महादेवजी के ही मुख को देखा करती थीं और महादेवजी भी निरन्तर सभी जगह सर्वदा सती के ही मुख का अवलोकन किया करते थे। इस रीति से परस्पर में एक-दूसरे संसर्ग से अनुराग रूपी वृक्ष को सती और शम्भु ने भावरूपी जल के सेवन के समान सेवन किया था।

दक्ष यज्ञ का आयोजन

इसी बीच में जगतों के हित को करने वाले प्रजापति दक्ष के एक महान् यज्ञ के यजन करने का समारम्भ किया था जो कि सर्वजीवन था। जहाँ पर अट्ठासी हजार ऋत्विज हवन करते हैं। हे सुरर्षियों! इसमें चौसठ हजार उद्गाता थे। उतने ही अध्वर्यु और नारद आदि होता गण थे। समस्त मरुद्गणों के साथ विष्णु भगवान् स्वयं ही अधिष्ठाता हुए थे। ब्रह्माजी स्वयं वहाँ पर त्रयी की विधि के निदर्शक थे। उसी भाँति सब दिक्पाल उसके द्वारपाल और रक्षक थे। वहाँ पर यज्ञ स्वयं

उपस्थित हुआ था और धरा स्वयं वेदी हुई थी अर्थात् पृथ्वी ने ही स्वयं वेदी का स्वरूप धारण किया था। अग्नि ने उस यज्ञ के महोत्सव में हवियों के शीघ्र ग्रहण करने के लिए ही अपने अनेक स्वरूप धारण किए थे। शीघ्र ही मरीचि आदि को आमन्त्रित करके जो पवित्रैक के धारण करने वाले थे वहाँ पर बुलाया था और उन्होंने सामिधेनी से अर्चि को प्रज्ज्वलित किया था। सप्तर्षि गण पृथक-पृथक सामगाथा करते थे जो कि श्रुतियों के स्वरों से पृथ्वी, दिशाओं को और विदिशाओं को एवं आकाश को पूरित कर रहे थे।

महात्मा दक्ष ने वहाँ पर योगियों में किन्हीं को भी परावृत नहीं किया था। न तो कोई ऋषिगण, न देवगण, न मनुष्य और न पक्षीगण, न उद्भिद, न तृण, न पशु और मृग परावृत किए गए थे। उस दक्ष ने सुमदाध्वरों में गन्धर्व, विद्याधर, सिद्धों के समुदाय, आदित्य, साध्य, ऋषिगण, यक्ष, समस्त स्थावर नागदर को भी परावृत नहीं किया था। कल्प, मन्वन्तर, युग, वर्ष, मास, दिन, रात्रि, कला, काष्ठा, निमेष आदि सब वृत किए हुए वहाँ पर सब समागत हुए थे। उस दक्ष के द्वारा वृत किए हुए महर्षि, राजर्षि, सुरभि संघ, पुत्रों के सहित नृप, गण देवता ये सब उस समय आगत हुए थे। कीट, पतंग, सब जल में समुत्पन्न जीव, वानर, श्वापद, घोर, विघ्न, शैल, नदियाँ और समुद्र, सरोवर, वापी, वृत हुए थे और सब गये थे। सभी हवियों के अपने भाग को ग्रहण करने की इच्छा वाले थे। वे दृढ़ यज्वीक्रतु के गमन करने वाले हुए थे। पाताल में निवास करने वाले असुर भी वहाँ पर समागत हुए थे। नागों की स्त्रियाँ और समस्त देवों की सभा आई थी।

जो कुछ भी इस जगत में वर्त्तन करने वाले थे चाहे चेतन हो या अचेतन ही वे सब में वरण इस सर्वस्व दक्षिणा वाले यज्ञ का समारम्भ किया था। उस यज्ञ में महात्मा दक्ष ने केवल भगवान् शम्भु का वरण नहीं किया था अर्थात् शम्भु को आमन्त्रण नहीं दिया था। शम्भु कपाल धारण करने वाले हैं अतएव उनमें यज्ञ में सम्मिलित होने की योग्यता ही नहीं है ऐसा ही निश्चय करके शम्भु को निमन्त्रित नहीं किया गया

था। सती भी यद्यपि परमप्रिय अपनी पुत्री थी किन्तु क्योंकि वह भी कपाली शिव की भार्या थी अतएव उनका भी वृत नहीं किया गया था क्योंकि यज्ञ के विषय में दक्ष ने दोषों को विचार कर लिया था। सती ने यह श्रवण करके कि पिताजी ने एक उत्तम यज्ञ करने का आरम्भ किया है किन्तु क्योंकि मैं कपालधारी की भार्या हूँ इसीलिए वास्तव में मुझको नहीं बुलाया गया है। वह सती अत्यन्त क्रोधित हो गयी थी जो कि कोप उसे अपने पिता दक्ष के ऊपर उनको हुआ था। उस अवसर पर उनका मुख और नेत्र क्रोध से लाल हो गये थे। उसी समय में सती ने शाप द्वारा दक्ष प्रजापति को दग्ध करने के लिए मनन किया था। यद्यपि वह सती क्रोध में आविष्ट थीं तो भी इस पूर्व समय को उसने स्मरण किया था। मन से ऐसा निश्चय करके उस समय में सती ने शाप नहीं दिया था क्योंकि मैंने पहले दृढ़ प्रतिज्ञा की है मेरी अवज्ञा होने पर मैं फिर निश्चय ही अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगी।

जिस समय दक्ष ने तनया की इच्छा वाले होते हुए बहुत समय तक मेरा स्तवन किया था उसी समय में मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं उसको शाप नहीं दूँगी। इसके अनन्तर अपने नित्य स्वरूप का उस देवी ने चिन्तन करके अत्यन्त उग्र, निष्कल और जगत् से परिपूर्ण का स्मरण किया था। उस सती ने हरि की योगनिद्रा नाम वाले पूर्व स्वरूप का स्मरण करती हुई उस समय में दक्ष की पुत्री ने मन के द्वारा इस प्रकार से चिन्तन किया था। ब्रह्मा के द्वारा उदित दक्ष प्रजापति ने जिसके लिए मेरी स्तुति की थी वह कुछ भी नहीं जाना था और भगवान् शंकर भी पुत्रवान् नहीं हुए थे। इस समय में देवगण का एक ही कार्य सम्पन्न हुआ था कि भगवान् शंकर मेरे लिए स्त्री में अनुराग करने वाले हो गये थे। मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी शम्भु के अनुराग की वृद्धि करने के लिए समर्थ नहीं थी और न कोई होगी क्योंकि अन्य किसी को भी शंकर ग्रहण नहीं करेंगे। तो भी मैं पूर्वयोजित समय से पूर्व ही अपने शरीर का त्याग कर दूँगी और जगत् की भलाई के लिए फिर गिरि अर्थात् हिमवान् में अपना प्रादुर्भाव करूँगी।

पूर्वकाल में हिमवान् के सुरम्य एवं देवों के गृह के सदृश प्रस्थ में शम्भु ने प्रीति से संयुत मेरे साथ रमण करने को बहुत समय तक मुझसे प्रेम किया था। वहाँ पर जो मेनका देवी है वह सुन्दर अंगों वाली और व्रत का समाचरण करने वाली है। वह परम सुशीला और पुर की स्त्रियों में अत्युत्तमा है जो कि पार्वती के गण हैं उनमें श्रेष्ठ है। उसमें मेरे साथ एक माता की ही भाँति चेष्टा की थी जो कि सभी कर्मों से यथोचित थी। उसमें मेरा अनुराग हो गया था और वह अनुराग ऐसा ही था कि वही मेरी माता होगी। पर्वतीय कन्याओं के साथ मैं बचपन की क्रीड़ायें चिरकाल पर्यन्त कर-करके मेनका की उत्तम प्रसन्नता को उत्पन्न करूँगी। मैं फिर भगवान् शम्भु की अत्यन्त प्यारी जाया (पत्नी) होऊँगी। फिर मैं उनके उपाय से बिना किसी संशय के देवों कार्यों को करूँगी। इस प्रकार से चिन्तन करते हुए वह फिर कोप से समावृत्त हो गयी थी। वहाँ पर क्रोध से लाल नेत्रों वाली उस समय में अपने शरीर को योग के द्वारा समस्त द्वारों को आवृत करके मस्तक स्फोटित कर दिया था।

उस महान स्फोट ने उस सती की प्राणवायु आत्मा के दशम द्वार पर निर्भेदन करके बाहर चली गयी थी। सब ऋषिगणों ने प्राणों का परित्याग करने वाली उसको देखकर आकाश में स्थित उन्होंने हा-हाकार किया था और वे शोक से व्याकुल नेत्र वाले हो गये थे। इसके अनन्तर उसी सती के बहिन की पुत्री वहाँ पर सती को मृत देखकर शोक से पुनः विजया ने रुदन किया था। हा! सती तुम कहाँ गयीं ? हा! सती आपको यह क्या हुआ ? हा! मौसी! इस प्रकार का उस समय में महान् क्रन्दन का शब्द हो गया था। हे सती! अप्रिय के श्रवण करने ही से तुमने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया है। अब मैं ऐसे सुदृढ़ विप्रिय को देखकर कैसे जीवित रहूँ। उस समय में अपने हाथ से सती के मुख का बार-बार मार्जन करती हुई उसने करुणापूर्वक विलाप करती हुई ने उसी सती के मुख को सूँघा था। वह अपने नेत्रों से निकलते हुए जलों से उस सती के हृदय और मुख का सिंचन करती हुई हाथों से

उसके केशों को उल्लासित करके बार-बार मुख को देख रही थी।

ऊपर और नीचे की ओर कम्पित शिर वाली शोक से व्याकुल इन्द्रियों से समन्वित हुई पाँचों अंगुलियों से अपने वृक्ष-स्थल और शिर को पीट रही थी। उस विजया ने अश्रुओं से युक्त कण्ठ वाली होती हुई यह वचन कहा था। माता वीरणी तेरे मरण का श्रवण करके शोक से कर्षित हो जायेंगी। वह माता कैसे प्राणों को धारण करने वाली होगी। वह तो तुरन्त ही जीवन को त्याग देगी। उसके द्वारा क्रूर कर्म करने वाले आपके पिता कैसे होंगे? आपको मृत सुनकर कोई कैसे अपना जीवन धारण करेगा। आपके प्रति निश्चय ही अपने कर्मों का विचिन्तन करके उस समय शोक से व्याकुल दक्ष ने ये बहुत ही क्रूर एवं कठोर कर्म किए थे और ज्ञान से हीन वह यजन करने वाला होकर कैसे कर्म के करने में प्रवृत्त हो रहे हैं क्योंकि वह श्रद्धा से रहित और बुद्धि का त्याग कर देने वाला है। हा! माता! बालक की भाँति रुदन करती हुई मुझे कुछ उत्तर तो दो। भक्ति से दयाशून्य मैं शोक से अपने प्राण शल्य के ही समान धारण कर रही हूँ। हे माता! क्या किसी समय में शम्भु के द्वारा विहित का स्मरण कर रही हो?

आपका वही सचन चक्षु, मुख और नासिका से सभी हैं। इन सबके सब विभ्रम इस समय में कहाँ चले गये हैं और आपका वह हसित भी कहाँ चला गया है? वे भगवान् शम्भु आपके विभ्रमों से हीन, सुन्दर नासिका से युक्त नेत्रों से युग्म वाले मन्द हास से रहित, आपके मुख को देखकर कैसे सहन करेंगे? हे माता! आपके बिना हर के आश्रम में समागत हुओं को बार-बार सुधा के तुल्य सुवृत वाक्य को कौन कहेंगी? बान्धवों में श्रद्धा वाली और पति के भावों के वश में अनुगमन करने वाली, सुलक्षणों से पूर्ण उसके समान अब कौन होगी। हे देवी! अब आपके बिना देवेश्वर शम्भु शोक से उपहत चेतना वाले होकर दुःखित आत्मा से युक्त-निरुत्साह और चेष्टा रहित हो जायेंगे। इस रीति से विशेष रूप से दुःखित होकर सती के प्रति विलाप करती हुई विजया सती को मृत देखकर अत्यधिक शोक से आहत हो गयी

थी। वह ऊपर की ओर भुजाओं को किए हुए विशेष क्रन्दन करती हुई कम्प से संयुत होती हुई भूमि पर गिर गयी थी।

दक्ष यज्ञ-भंग वर्णन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसी बीच में भगवान् शम्भु परम शोभन मानस ह्रद में सन्ध्या वन्दना को समाप्त करके आश्रम की ओर आये हुए थे। वृषभध्वज ने विजया के परम दारुण रूदन की ध्वनि को आते हुए ही श्रवण किया था और फिर वे चकित हो गये थे। इसके अनन्तर भगवान् शम्भु बलवान मन और मारुत के वेग से त्वरान्वित होकर शीघ्र ही अपने आश्रम के स्थान पर प्राप्त हो गए थे। उस समय में हर ने प्यारी दाक्षायणी देवी को मृता देखकर भी अत्यधिक प्रियभाव से मृत होने पर भी त्याग नहीं किया था। इसके उपरान्त मुख को देखकर और बार-बार आमृजन करके यह सोई है इसी प्रकार से दाक्षायणी से बार-बार कैसे पूछा था। इसके उपरान्त भर्ग के वचन का श्रवण करके उसकी बहन-पुत्री विजया ने जिस रीति से दाक्षायणी का निधन कहा था।

विजया ने कहा—हे शम्भु! प्रजापति दक्ष के यज्ञ करने के लिए इन्द्र सहित सभी देवों को बुलाया था तथा दैत्यों, राक्षसों, सिद्धों और गुह्यकों को भी बुलाया था। ब्राह्मणों, श्री गोविन्द और इन्द्रादिक् पतियों को भी उस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए बुलाया था तथा देवयोनि को और समस्त साध्य तथा विद्याधरों को भी बुलाया था। हे शंकर! जो सत्व थे उसने उनको आहूत नहीं किया था जो कि समस्त भुवनों में भी हैं। यह दाक्षायणी इस प्रकार से प्रवर्त्तित यज्ञ के विषय में श्रवण करके जो कि मेरे वचन से ही श्रवण किया था उसने भगवान् शम्भु का और अपने न बुलाने के हेतु के विषय में विचार किया था। मैंने जैसे भी सुना था उसी के अनुसार चिन्ता करती हुई उस सती का ज्ञान प्राप्त करके, हे भूतेष मैंने ही यज्ञ में न बुलाने का कारण कहा था। वह कारण यही था कि दक्ष ने सोचा था कि भगवान् शम्भु

कपाल के धारण करने वाले हैं और उसकी पत्नी भी उनके ही संग होने के कारण से विशेष गर्विता हो गयी हैं। अतएव शम्भु और सती भी मेरे यज्ञ में शामिल नहीं होंगे। यही न बुलाने का हेतु मैंने पहले ही अपनी पत्नी वीरणी को उस मन्दिर में बोलते हुए दक्ष के मुख से ही सुना था। यही मेरे वचन का श्रवण करके वह सती कान्तिहीन मुख वाली होकर भूमि में बैठ गई थी। वह कोप परायण होती हुई मुझसे भी कुछ नहीं बोली थी।

हे हर! उसी क्षण उसका मुख क्रोध से युक्त हो गया था और उसकी भृकुटियाँ टेढ़ी हो गई थी तथा उसका मुख ऐसा श्याम पड़ गया था जैसा कि धूमकेतु से आकाश हो जाया करता है। उसने थोड़ी ही देर तक ध्यान करके उसने महान् स्फोट से अपने मस्तक का भेदन कर अपने प्रिय प्राणों का उत्सर्जन कर दिया अर्थात् मृत हो गई थी मार्कण्डेय मुनि ने कहा–वृषभध्वज ने विजया के इस वचन का श्रवण करके वे अत्यधिक कोप से प्रज्ज्वलित अग्नि की ही भाँति उत्थित हो गये थे। अत्यधिक कोप से आकुल उनके कान्त, चक्षु, नासिका और मुख से अग्नि की महती ध्वनि का सृजन करती हुई परमघोर जलती हुई कणिकायें निकली थीं। कल्प के अन्त में आदित्य के वर्चस वाली बहुत सी उल्कायें विनि:सृत हो गई थी। इसके अनन्तर वे शम्भु वहाँ पर बहुत ही शीघ्र चले गए थे जहाँ पर महान् तपस्वी दक्ष विद्यमान थे और यज्ञ कर रहे थे। महान् कोप से आवृत्त होकर भर्ग ने उस यज्ञ का अवलोकन किया था जो महान् धन के वैभव से सुसम्पन्न थे और पाः धूप आदि युक्त था। वह यज्ञ हवन किया हुए आज्य से वृद्धि युक्त था तथा दीप्त हुई वह्नि से विराजित हो रहा था। शम्भु ने समुचित स्थानों पर संस्थित आयुधों और ध्वजों से युक्त सब दिक्पालों को देखा था।

उस यज्ञ के मध्य में विधाता की ओर व्यवस्थित भगवान् विष्णु को भी अवलोकन किया था। उन सबको देखकर अतीव कोप से शम्भु कुपित हो गये थे। अपनी-अपनी भार्याओं के सहित भग, सूर्य, सोम

सहस्त्राक्ष, गौतम, पूर्व भाग में अवस्थित सनत्कुमार, आत्रेय, भार्गव, विनतासुता, मरुद्गण साध्य, आग्नेय जातवेदा को देखा था। काल, चित्रगुप्त, कुम्भ्योनि, गालव, समस्त विश्वदेवा, कव्यवाह आदि पितृगणों को देखा था। समस्त अग्निष्वात आदिक को और चारों प्रकार के भूतग्राम को, सौम, प्रेतगणों को, दक्षिण दिशा में अवस्थित सिद्धों को देखा था। वहाँ पर शम्भु ने राक्षसों को, पिशाचों को, भूतों को, मृग, पक्षियों को, कव्यादों को, क्षुद्र जन्तुओं को तथा पुण्य जनेश्वर को देखा था। महर्षि मौद्गल को, नैऋत्य दिशा में राहु को तथा किन्नरों को, महारगों को, नक्रों को, मत्स्यों को, ग्राहों को, कच्छपों को, सात समुद्रों को, सिन्धु को, नदियों को, तीर्थों को और गुह्यकों को देखा था।

मानस आदि सब मनुओं को तथा गंगा नदियों को, कामदेव को, मधु को, बसन्त को और अनुगों के सहित वरुण को देखा था। शनैश्चर को, समस्त पर्वतों को जो पश्चिम दिशा में व्यवस्थित थे। प्राणादि पाँचों वायुओं और गणों के सहित समीरण को, कल्पद्रुमों को, हेमवान् पर्वत को और महामुनि कश्यप को देखा था। वायव्य दिशा में कमल व्रति को और फलों को तथा कलानिधि को, अनेक रत्नों को, हेमों को, मनुष्यों को तथा पर्वतों को देखा था। हिमाद्रि जिनमें प्रमुख था और यज्ञ, स्थूल, कर्णादि, बुध, नर, कुबेर के सहित नरवाह यक्षराज, ध्रुव, धर और सोम, विष्णु, अनिल और अनल, प्रत्यूष, प्रभास इन सबको कौवेरी दिशा में समवस्थित हुए देखा था। वृषभध्वज के बिना समस्त रुद्रों को, जीवों को तथा मनुओं को, विविध बाहु से संजात वैश्यों को और सभी ओर शूद्रों को देखा था। ऐशानी दिशा में विविध भाँति के अन्नों को, ब्रीहियों को, तिलों को भी देखा था। ऐशानी और पूर्व दिशा के मध्य में सशित व्रतों से संयुत ब्रह्मर्षियों को देखा था।

चारों महर्षियों को, वेदों को और छै वेदों के अंगों को देखा था। नैर्ऋत्य और पश्चिम दिशा के अन्तःस्थित आनन्द श्वेत पर्वत को देखा था। सहस्त्र काद्रवेय के सहित सात भोगियों को, वहाँ पर ही केतु की ओर डाकिनियों से समन्वित कूष्माण्ड को देखा था तथा नाना वर्णों से

संयुत तथा विद्युत के सहित अन्य जलधरों को वहीं पर स्थित दिग्गजों को, जिनमें ऐरावत प्रमुख था भगवान् हर ने देखा था। यथास्थान पर दिक्करिणी से समन्वित सबको देखा था। महान् धन से संयुत उस यज्ञ को दूर ही से देखकर शिव ने वीरभद्र नामक गण को शीघ्र ही उसकी ओर प्रेषित किया था। वह वीरभद्र महागण भी बहुत से अनेक गणों संवृत हुआ था। उसने महात्मा दक्ष के यज्ञ का फिर ध्वंस कर दिया था। उस महान् यज्ञ के विध्वंस करते हुए वीरभद्र को देखकर समस्त देवगणों से आवृत भगवान् वैकुण्ठ ने वरण किया था। उनको निवारण करते हुए देखकर ही ईश्वर के लोचन क्रोध से लाल हो गये वे फिर ईश्वर स्वयं ही उस महायज्ञ में प्रविष्ट हो गये थे और उस यज्ञ का ध्वंस कर दिया था।

भग आगे से ही उस यज्ञ में प्रवेश करते हुए उनको सर्वप्रथम देखकर अपनी बाहुओं को फैलाकर भगत्वरा से संयुत होकर भगवान् भूतेश के पास गया था। उसको सामने आते हुए देखकर भगवान् भर्ग भी अत्यन्त कुपित हो गये थे और अपनी अंगुलि के अग्रभाग के प्रहार से उन्होंने उस भग के नेत्रों का हनन कर दिया था। नेत्रों से हीन विरुपाक्ष भग को देखकर दिवाकर से त्वरायुक्त होते हुए स्पर्धा करने वाले भगवान् शर्व के समीप आये थे। इसके उपरान्त महादेव ने सूर्य को कर से पकड़कर हाथ से दूर हटाकर अत्यन्त क्रोध युक्त होकर उस यज्ञ की ओर ही धावमान हो गये थे। मार्त्तण्ड (सूर्य) हँसते हुए बड़े वेग के साथ दोनों बाहुओं को फैलाकर कहने लगा आओ, मैं तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा। इतना कहकर सूर्य ने उस शिव को आगे चलकर फिर रोक दिया था। हँसते हुए उस सूर्य के दाँतों को वृषभध्वज ने क्रोधयुत होकर हाथ के ही प्रहार से मुख से गिरा दिया था। इस प्रकार से सूर्य को बिना दाँतों वाला तथा भग को हीन मन्त्रों वाला देखकर समस्त देवगण, ऋषि लोग और जो भी वहाँ पर अन्य थे वे सब भाग गये थे।

भगवान् सब देवगण आदि को भागकर परमाधिक कोप वाले होते

हुए वे मृग के रूप से अपमान करते हुए उस यज्ञ को ही पकड़ने के लिए पीछे दौड़े थे। वह यज्ञ भी आकाश के मार्ग के द्वारा ब्रह्मस्थान में प्रवेश कर गया था। वृषभध्वज भी उसके पीछे से कुपित होते हुए ब्रह्मस्थान को गमन कर गये थे। भर्ग से डरा हुआ यज्ञ ब्रह्मा के कहने पर नीचे उतर आया था और अवतरित होकर अपनी माया से सती के देह में प्रवेश कर गया था। भगवान् भर्ग भी मृत हुई दक्ष की दुहिता के निकट चले गये थे उस समय में भर्ग पीछे हो गए थे और वहाँ पर यज्ञ तथा सती के शव को उन्होंने देख लिया था। उस समय भगवान् हर ने दाक्षायणी देवी सती को मृता देखकर यज्ञ को भूलकर उसके समीप में स्थित हुए उन्होंने बहुत अधिक उस सती के विषय में शोक किया था। शूलपाणि भगवान् शम्भु अनेक प्रकार के सती के गुण गणों का चिन्तन करते हुए उस देवी सती की परमाधिक सुन्दर दाँतों की पंक्ति को, कमल के समान प्रकाशित मुख को, अरुण दर्शन वस्त्र, उसकी दोनों भृकुटियों के जोड़े को देखकर बहुत ही तीव्रतर शोक से व्याकुल होकर रुदन करने लगे थे।

विजया सखी के शोक विचार

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा– उस अवसर पर भगवान शिव दक्षा के गुणगणों को परिगणन करते हुए हुए अत्यधिक दुःख से प्रपीड़ित होकर प्राकृत मनुष्य की ही भाँति शोकाकुल हो गये थे। उस समय में विलाप करते हुए शिव को जानकर अर्थात् सती के वियोग में शम्भु को रुदन करते हुए देखकर कामदेव, रति और बसन्त के सहित महेश्वर प्रभु के समीप में प्राप्त हो गया था। उस रति के पति कामदेव ने शोक से अत्यन्त परिभ्रष्ट उस शम्भु को जो भ्रष्ट चेतना वाले और रुदन करने वाले थे, एक ही साथ अपने पाँचों बाणों से प्रहार किया था। शोक के कारण अभिहत चित्त वाले भी शम्भु कामदेव के बाणों के प्रहार से व्याकुल होकर अत्यन्त ही संकीर्ण भाव को प्राप्त हो गये थे और उन्होंने बहुत शोक किया था और वे मोह को भी प्राप्त हो गये थे

अर्थात् शोक के वेग से मूर्छित हो गये थे। वे एक क्षण में तो शोकाकुल होकर भूमि पर गिर जाया करते थे और एक क्षण में ही उठकर दौड़ लगाते थे। एक ही क्षण में वे भ्रमण करने लगते थे अथवा चक्कर काटा करते थे और फिर वे विभु वहीं पर अपने नेत्रों को निमीलित कर लिया करते थे। किसी समय में देवी दाक्षायणी का ध्यान करते हुए हास करने वाले हो जाते थे अर्थात् खूब अधिक हँसते रहा करते थे। किसी समय में भूमि में लेटी हुई उस सती का आलिंगन किया करते थे मानों वह रस के भावों से युक्त ही स्थित होवे। भगवान शंकर 'हे सती! हे सती!' इस प्रकार से निरन्तर सती के नाम का कथन करके ऐसा कहा करते थे कि अब इस व्यर्थ में किए हुए नाम का परित्याग कर दो। ऐसा कहकर अपने हाथ से उस सती के शव का स्पर्श किया करते थे। शम्भु भगवान् अपने हाथ से इस सती का परिमार्जन करके उसके यथास्थित अलंकारों को विश्लेषित करके अर्थात् शरीर से दूर करके फिर उन अलंकारों को वहाँ पर ही अर्थात् उस सती के मृत शरीर पर अलंकारित किया करते थे। तात्पर्य यह है कि कभी तो आभूषणों को सती के मृत शव से दूर हटा लेते थे और उसी सती को सजीव समझकर आभूषणों को उनके अंगों में धारण कराया करते थे।

भूतेश्वर भगवान् शम्भु के इस प्रकार से विलाप-कलाप करने पर भी जिस समय में वह मृत हुई सती ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया था तो उस समय भगवान् शिव शोक की उद्गाढ़तापूर्वक अत्यधिक रूदन करने लगे थे। जब वे रूदन कर रहे थे तो उसके आँसू नीचे गिर रहे थे। उस समय में देवगण ने उसको देखा था और वे ब्रह्मादिक देव चिन्ता में परायण होते हुए अत्यधिक चिन्तातुर हो गये थे। भूमि पर गिरे हुए ये वाष्पक अर्थात् आँसू यदि पृथ्वी का दाह कर देंगे तो वहाँ पर क्या उपाय करना चाहिए अर्थात् इन आँसुओं के द्वारा पृथ्वी का दाह का क्या प्रीतकार होगा इससे ये सभी हा-हाकार करने लगे थे। इसके अनन्तर ब्रह्मादिक देवों के शनैश्चर के साथ विचार किया था

और उन्होंने भगवान शम्भु के जो मोह के वशीभूत हो गए थे वाष्पों को धारण करने हेतु शनैश्चर का स्तवन किया था। देवगण ने कहा–हे महान् भाग्य वाले! हे शनैश्चर देव! आप तो लोकों पर अनुग्रह करने वाले हैं। हे मूलशक्ति से समुत्पन्न होने वाले! आपका जन्म तो सूर्यदेव से ही हुआ है। आपके लिए हमारा नमस्कार समर्पित है। हाथ में शूल धारण करने वाले, पाश को धारण करने वाले और धनुर्धारी आपको नमस्कार है। आपका हस्त वरदान देने वाला है और अन्य तम की छाया के आत्मज हैं–ऐसे आपको नमस्कार है।

हे नील मेघ के सदृश! आप पिसे हुए अञ्जन के तुल्य हैं। समस्त लोकों के प्राणों के धारण करने में कारणस्वरूप आपके लिए प्रणाम। आपको नमस्कार होवे। हे भगवान्! आप शीघ्रतापूर्वक प्रसन्न हो जाइए। भगवान् शम्भु के शोक से समुत्पन्न हुए वाष्पों आँसुओं से हमारी इस पृथ्वी की रक्षा करो। जिस प्रकार से पुरातन समय में वर्षों तक वृष्टि का अवरोध किया था और आप ही ने मेघों से होने वाली वृष्टि को रोक दिया था अब उसी भाँति भगवान् हर के शोक के गिरे हुए वाष्पों के जल में भी कीजिए। अर्थात् इस आँसुओं के जल को भी रोक दीजिए। आपके द्वारा जलों का ग्रहण करना देखकर पुष्कर आदि उन मेघों ने महेन्द्र की आज्ञा से निरन्तर वर्षा को छोड़ा था अर्थात् सतत वृष्टि करते रहे थे। आपने पहले पूर्व समय में उस सम्पूर्ण वर्षा के जल को आकाश ही में विनष्ट कर दिया था। अब उसी भाँति भगवान् शिव के आँसुओं के जल को भी नष्ट करने के लिए प्रयत्न कीजिए। भगवान् शिव के वाष्पों के निवारण करने के कार्य से अन्य कोई भी आपके बिना सामर्थ्य रखने वाला नहीं है। यह शिव के शोक से समुत्पन्न आँसुओं का जल देव गन्धर्वों के सहित तथा पर्वतों के सहित ब्रह्मलोकों का दाह कर देगा। ऐसी ही इन आँसुओं के जल में दाहकशक्ति विद्यमान है। वह वाष्पों का जल इस भूमण्डल में गिरा है इसलिए आप अपनी माया से इनको धारण करो।

मार्कण्डेय ऋषि ने कहा– समस्त देवों द्वारा इस प्रकार से भाषण

किए जाने पर सूर्य पुत्र शनैश्चर ने अत्यन्त दयाद्र मन वाला होकर उन देवों को प्रत्युत्तर दिया था। शनैश्चर ने कहा—हे सुरों में श्रेष्ठों! अपनी शक्ति के अनुसार ही आपका कार्य करूँगा किन्तु ऐसी ही होना चाहिए कि दाह करने वाले मुझको भगवान् शम्भु न जान लेवें। महान् दुःख और शोक के व्याकुल वाष्पधारी शिव के समीप में उनके कोप से यदि वह जान लेंगे तो मेरा शरीर निश्चय ही नष्ट हो जायेगा—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। इस कारण से ऐसा ही करिए कि जिस प्रकार से सती के पति भूतेश्वर शिव मुझको न जान पावें और उनके नेत्रों से मैं पृथक ही बना रहूँ। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके पश्चात् वहाँ से ब्रह्मा आदि समस्त देवता शंकर के समीप में गये थे और सांसारिक योगमाया के द्वारा शम्भु को उन्होंने पुनः अधिक मोहित कर दिया था। शनैश्चर भी उसी समय भूतेश्वर के समीप में पहुंच गया था और उस दुराधर्म वाष्पों की वृष्टि को माया से रोक दिया था। जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी तो वह शनैश्चर भी शम्भु के वाष्पों को धारण करने में असमर्थ हो गया था तो उसके द्वारा जलधारक महागिरि पर वे वाष्प प्रक्षिप्त किय गये थे।

लोकालोक पर्वत के समीप में जलधारा वाष्प वाला गिरि है जो पुष्कर द्वीप के पृष्ठ में स्थित है। वह तोय सागर के पश्चिम में है। वह सब परिमाण से मेरु पर्वत के सदृश है। उस समय में असमर्थ शनैश्चर ने उस पर ही वाष्पों को विन्यस्त कर दिया था। वह पर्वत भी शम्भु के उन वाष्पों को धारण करने में समर्थ नहीं हुआ था। उन वाष्पों के समुदायों से वह पर्वत विदीर्ण हो गया था और शीघ्र ही मध्य भाग में भग्न हो गया था। उन वाष्पों ने उस पर्वत का भेदन करके वे फिर तोय सागर में प्रवेश कर गये थे। वे वाष्प अतीव क्षार थे कि वह सागर भी ग्रहण करने में समर्थ नहीं हुआ था। इसके अनन्तर सागर को मध्य में भेदन करके वे वाष्प सागर की पूर्व में रहने वाली बेला पर समागत हो गये थे तथा स्पर्श मात्र से उन्होंने उस बेला का भेदन कर दिया था। पुष्कर द्वीप के मध्य में गमन करने वाले ने वाष्प बेला का भेदन करके

वैतरणी नदी हो गये थे और पूर्व सागर में गमन करने वाले हो गये थे। जलधारा के भेद से और सागर के संसर्ग से कुछ सौम्यता को प्राप्त होकर फिर उन्होंने पृथ्वी का भेदन नहीं किया था।

सती के शरीर के खण्ड-खण्ड होकर गिरना

इसके अनन्तर शोक से विमूढ़आत्मा वाले शम्भु विलाप करते हुए उस मृत सती के शव (मृत देह) को अपने कन्धे पर रखकर प्राच्य देशों को चले गए थे। एक उन्मत्त की भाँति गमन करने वाले इन शंकर के भाव को देवगणों ने देखकर ब्रह्मा आदि देवगण शव के भ्रष्ट होने के कर्म के विषय में चिन्ता करने लगे थे। भगवान् शंकर के शरीर के स्पर्श से यह शव विकीर्णता को प्राप्त नहीं होगा फिर किस रीति से उस वृषभध्वज के कन्धे से इस शव का भ्रंश होगा। यही चिन्तन करते हुए वे ब्रह्मा विष्णु और शनैश्चर योगमाया से अदृश्य होते हुए सती के शव के अन्दर प्रवेश कर रहे थे। देवों ने इसके उपरान्त सती के शव के अन्दर प्रवेश करके उन्होंने उस सती के शव के खण्ड-खण्ड कर दिए थे और विशेष रूप से स्थान-स्थान में उन खण्डों को भूतल में गिरा दिया था। देवीकूट के दोनों चरणों को सबसे प्रथम भूमि में निपातित किया था। उड्डीपान में दोनों उरुओं के युग्म को जगतों के हित के लिए भूमि पर उसको डाला था।

कामगिरि कामरूप में योनि मण्डल गिरा था और वहाँ पर ही पर्वत की भूमि में सती के शव का नाभिमण्डल गिरा था। जालन्धर में सुवर्ण के हार से विभूषित स्तनों को जोड़ा गिरा था, पूर्वगिरि में अस और ग्रीवा पतित हुए और फिर कामरूप से शिर पतित हुआ था। भगवान् शंकर जितने भूमि के भाग में सती के शव लेकर गये थे उतना ही प्राच्यों में याज्ञिक देश कीर्तित हुआ था। अन्य जो सती शव के अवयव थे वह छोटे-छोटे टुकड़ों में देवों के द्वारा खण्डित कर दिए गये थे। हे द्विजो! जहाँ-जहाँ पर सभी सती के पाद आदि पर्यन्त शरीर के अवयव गिरे थे वहाँ-वहाँ पर ही महादेव स्वयं लिंग के स्वरूप धारण

करने वाले हो गये थे और वे मोह से समायुक्त होकर सती के प्रति स्नेह के वशीभूत होकर स्थित हो गये। ब्रह्मा-विष्णु और शनैश्चर ने भी समस्त देवगणों ने परम प्रीति के साथ सती के पाद आदि शरीरावयवों की और ईश की पूजा की थी।

देवीकूट में महादेवी महाभाग, इस नाम से गान की जाया करती हैं। जगत् के प्रभु योगनिद्रा सती के दोनों चरणों में लीन हैं। उड्डीयान में कात्यायनी और कामरूप वाली कामाख्या हैं। पूर्णगिरि व पूर्णेश्वरी है तथा जालन्धर गिरि में चण्डी इस नाम से विख्यात है। कामरूप के पूर्वान्त में देवी दिकुरवासिनी है तथा ललितकान्ता, इस नाम से योगनिद्रा का गान किया जाता हैं। जहाँ पर सती का शिर गिरा था वहाँ पर वृषभध्वज उस शिर का अवलोकन करके लम्बी श्वास लेते हुए शोक के परायण होकर उपविष्ट हो गये थे। भगवान् शंकर के उपविष्ट हो जाने पर वहाँ पर ब्रह्मा आदि देवगण दूर से ही शिव को सान्त्वना देते हुए उनके समीप में गये थे। भगवान् शंकर ने आते हुए देवों का अवलोकन करके शोक और लज्जा से समन्वित होते हुए वहीं पर शिवत्व को प्राप्त होकर लिंग के स्वरूप को प्राप्त हो गये थे। भगवान शंकर के लिंग का स्वरूप प्राप्त हो जाने पर ब्रह्मा आदि देवगणों ने उन लिंग के स्वरूप वाले जगतगुरू त्र्यम्बक भगवान् का वहाँ पर ही स्तवन किया था।

देवगण ने कहा—महानदेव शिव, स्थाणु, उग्र, रुद्र, वृषभध्वज-श्मशान में निवास करने वाले, सबका अन्तःकरण, पर, भर्ग को हम भक्ति-भाव से नीललोहित शंकर को प्रणाम करते हैं जो गिरीश, वरदान देने वाले, भूत भावन और अव्यय देव हैं। अनादि, मध्य और संसार की योगविद्या वाले शम्भु के लिए नमस्कार है जो परमशिव, शान्त, ब्रह्म और लिंगमूर्ति हैं उनके लिए नमस्कार है। जटिल अर्थात् जटाजूट वाले, गिरीश, विद्या की शक्ति के धारण करने वाले, शिव, शान्त ब्रह्म और लिंग की मूर्ति वाले आपके लिए नमस्कार है। ज्ञानरूपी अमृत के अन्त तथा सम्पूर्ण शुद्ध देहान्तर, शिव, शान्त, ब्रह्म

और लिंगमूर्ति के लिए नमस्कार है। आदि और मध्य तथा अन्त स्वरूप, स्वभाव अनल की दीप्ति वाले, शिव, शान्त, ब्रह्म और लिंगभूमि वाले के लिए नमस्कार है। प्रलय के अन्त में विराजमान, प्रलय और स्थिति के कारण, शिव, शान्त, ब्रह्म और लिंगमूर्ति के लिए नमस्कार है।

जो परों से भी पर हैं और उससे पर परमात्मा है उसके लिए, शिव, शान्त, ब्रह्म और लिंगमूर्ति के लिए नमस्कार है। ज्वालाओं की मालाओं से समावृत अंगों वाले, विश्व के रूप वाले, शिव, शान्त ब्रह्म और लिंगमूर्ति आपके लिए प्रणिपात समर्पित है। परमार्थ स्वरूप, ज्ञान के दीप अर्थात् प्रकाश करने वाले, वेधा, शिव, शान्त, ब्रह्म और लिंगमूर्ति आपके लिए ओंकार के सहित नमस्कार है। हे दाक्षायणी के पतिदेव! हे मृड! हे शर्व! हे महेश्वर! हे सब भूतों के ईश! हे शिव! हे भगवान् आपके नमस्कार है आप प्रसन्न होइए। हे लोकों के स्वामिन्! हे महेश्वर! आपको शोक के सहित चेष्टा करते हुए होने पर सभी देवगण समाकुल हैं इसलिए आप अब इस शोक का परित्याग कर दीजिए। हे भूतों के ईश! आपको नमस्कार है—नमस्कार है। हे सब कारणों के भी कारण! प्रसन्न होइए। हम सबकी रक्षा करो और शोक का त्याग कर देवें। आपके लिए नमस्कार है।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इस प्रकार से भली-भाँति स्तवन किए गए जगत् के पति महादेव अपने रूप में समस्थित होते हुए शोक से आहत प्रादुर्भूत हुए थे। उनकी शोक से विह्वल और बिना चेत वाले अर्थात् मन्य मनस्क प्रादुभूर्त हुए देखकर देवों ने शोक के अपहरण करनेवाले विधि वृषभध्वज की स्तुति की थी। ब्रह्माजी ने कहा—हे हर! आप ही हिरण्यबाहु ब्रह्मा हैं और आप ही जगत् के पति विष्णु हैं। इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और विनाशों के आप ही हेतु होते हैं। आप अपनी अष्ट मूर्तियों के द्वारा इस सम्पूर्ण चराचर जगत् में व्याप्त होकर इसके उत्पादक-स्थापक और नाशक भी हैं। विश्वकृत! आप ही हैं। हे महादेव! आपकी आराधना करके मुक्ति पाने की इच्छा वाले

पुरुष मुक्ति को प्राप्त हो गये हैं। वे राग-द्वेष आदि बन्धन के कारणों से छूटे हुए हैं और बुद्ध पुरुष संसार से विमुख होते हैं। हे महेश्वर! विभिन्न वायु, अग्नि और जल के ओघ से रहित, सूर्य और चन्द्रमा से युक्त, इस रीति से दूर में भी स्थित नहीं है अर्थात् सन्निकट में ही वर्तमान हैं। तीन मार्गों के मध्य में संस्थित हैं और अनु प्रकाशक हैं, परमशुद्धमय तत्त्व हैं। जो ज्ञानरूपी जल के द्वारा बर्धित-समीप में ही समुत्पन्न तपरूपी जत्रों से संस्थागित, आठ शास्त्ररूपी तरु का पुष्प है उसका सूक्ष्म उपगमन करने वाला, पीत-पराग सदा ही आपके वश में गमन करने वाला है। समीकरण (वायु) की ध्वनि को नीचे की ओर समाधान करके और रात्रि को ऊपर की ओर निरुद्ध करके हंस के मध्य से हृदय के पद्म के मध्य में रज सुमुखीकृत है परन्तु आपका तेज सर्वदा सर्वत्र है। पूरक अथवा कुम्भक प्राणायामों से रिक्त चित्रों से जो पर नामक प्रेरणा है, वे प्रपञ्च योगियों के द्वारा दृश्य और अदृश्य है। तात्विक रूप से शुद्ध और वृद्ध आपके द्वारा लब्ध हैं। सूक्ष्म जगत् में व्याप्त और गुणों के समूह से पीन मृग्यम्बुधि के साधन-साध्य रूप वाला है। हे महेश! चोर और रक्षकों के द्वारा न तो उग्झित है और न नीत ही है अर्थात् लिया हुआ है ऐसा ही आपका अर्थ से हीन चित्त है। वह चित्त कोप से, शोक से, मान से और दम्भ से भी व्यय नहीं होता है। वह चित्त तो उपयोग करके अन्य प्रकार से ही बढ़ता रहा करता है। आप माया से मोहित हैं इसलिए आप हृदय में स्थित को ही आपने विस्मृत कर दिया है। माया को भिन्न समझकर अपनी आत्मा के द्वारा ही आत्मस्वरूप को धारण करो।

हे महेश्वर! जगत् के हित के सम्पादन करने के लिए हमने पूर्व में ही माया का स्तवन किया था उसके द्वारा ध्यान में संलग्न चित्त बहुत से प्रयत्नों के द्वारा प्रसाधित है। शोक, क्रोध, लोभ, काम, मोह, परात्मता, ईर्ष्या, मान, संशय, कृपा, असूया, जुगुप्सिता ये बारह, मन में मल होते हैं जो बुद्धि के नाश करने के हेतु हैं। आप जैसे महापुरुषों द्वारा इन बारह मानस मलों का सेवन नहीं किया जाया करता है। हे

हर! आप शोक का परित्याग कर दीजिए। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इस रीति से साम के द्वारा स्तुति किए गए शम्भु ने अपने वाँछित का संस्मरण करके भी सती के शोक से बिना कृत हुए शिव ने उस समय में आत्मा का अवधारण नहीं किया था। नीचे की ओर को मुख किए हुए समवस्थित ब्रह्माजी को देखकर उसने धीरे से यह कहा था–हे ब्रह्माजी! कुछ अतिक्रमण करनेवाली बात कहो। आप बतलाओ, अब मैं क्या करूँ।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–इस प्रकार से वामदेव और समस्त देवों के द्वारा कहे हुए विधना (ब्रह्मा) उस समय मे महेश्वर के शोक का विनाश करने वाला यह वचन कहा था। ब्रह्माजी ने कहा–हे महादेव! अपनी आत्मा के द्वारा ही अर्थात् अपने-आप ही अपनी आत्मा अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप का संस्मरण करके शोक का परित्याग कर दो। आप शोक करने के स्थान नहीं हैं। शोक से आपका परम अन्तर हो गया है। हे भूतेश्वर! आपके शोकयुक्त हो जाने पर सभी देवगण अत्यन्त भयभीत हो गए हैं। आपका क्रोध और शोक जगती-तल को भ्रंश कर देगा और आपका शोक इसका शोषण कर देगा। आपके वाष्पों अर्थात् अश्रुपात से यह सम्पूर्ण पृथ्वी व्याकुल होकर विदीर्ण हो जाती यदि शनि आपके वाष्पों को अवग्रहण नहीं करता। वह शनि भी हठ से कृष्ण हो गया है। जहाँ पर गन्धर्वों के सहित सब देवगण सदा उत्सुकता से युक्त होकर क्रीड़ा किया करते हैं। जो यह सुमेरु पर्वत के सदृश मान से उत्तम पर्वत हैं–पुष्कर, आवर्त्तक आदि जलों का पान किया करते थे–जहाँ पर जा करके महामुनि कुम्भयोनि मन्दार पर्वत से निरन्तर जगत के हित में तपस्या किया करते थे।

जिस पर्वत में भगवान शम्भु स्थित होकर पूर्व में जल के सागर को हाथ के मध्य में रखकर तप के बल से पी गये थे। शनैश्चर के द्वारा आपके वाष्पों को सहन करने में असमर्थ होते हुए क्षिप्त लोकों से यह जलधारा नामक गिरि विदारित हो गया था। हे शम्भो! आप वाष्प पर्वत का विशेष रूप से भेदन करके सागर में चले गये थे। वे प्रभीत

अण्डजों से सकूल सागर का शीघ्र ही भेदन करके वाष्प उसके पूर्व पुलिन पर चले गये थे और उन्होंने उस पुलिन का भी भेदन कर दिया था। वेला का भेदन करके फिर पृथ्वी का भेदन किया था और उन्होंने एक नदी को बना दिया था। उन्होंने उस वैतरणी नाम वाली नदी को बना दिया था जो पूर्व सागर की ओर गमन करने वाली थी। वह नदी गर्म जल के होने के कारण से अत्यन्त भीषण थी जो किसी भी नौका, विमान, द्रोणी और रथ के द्वारा भी पार करने के योग्य नहीं हो सकी थी। पृथिवी महान् दुःख से साथ अब उसको धारण किए हुए थी। वह सदा ही ऊर्ध्वगत अर्थात् ऊपर की ओर जाते हुए वाष्पों से नभश्चरों का विक्षेपण करती हुई थी और उसके ऊपर से देवगण भी भय से आतुर होकर गमन करते हैं।

यमराज के द्वार से परावर्तित होकर दोनों जल से विस्तार वाली निम्न होती हुई वह सम्पूर्ण तीनों भुवनों को भय उत्पन्न करती हुई वहन किया करती है। आपके शोक संतप्त निःश्वासों की वायुओं से समस्त पर्वत और कानन व्याप्त हैं और समाकुल द्वीपीनाग आज तक भी प्रतिशयन नहीं किया करते हैं। आपके संतप्त निःश्वासों से समुत्पन्न वायु सम्पूर्ण जगत के सुख को पीड़ित करता हुआ वह बाधाहीन और सनातन आज तक भी शमन को प्राप्त नहीं होता है। सती के शव अर्थात् मृत शरीर को वह करनेवाले आपके पद-पद में यह पृथ्वी शीर्यमाण हो रही है और वह परम व्याकुल पृथ्वी अपनी व्याकुलता का मोचन नहीं कर रही है। इस समय न तो पाताल में और न स्वर्ग में वह सत्व विद्यमान है जो आपके क्रोध से और शोक से हे वृषभध्वज! व्याकुल न होवे। इसी कारण से आप शोक और अमर्ष को परित्याग करके हम सब को शान्ति का प्रदान करो। अपनी आत्मा के द्वारा ही अपनी आत्मा को जानिये अर्थात् स्वयं ही अपने आपके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कीजिए और आत्मा से ही आत्मा को धारण करिए और वह सती दिव्यमान से सौ वर्षों के व्यतीत हो जाने पर त्रेता युग के आदि में वही सती पुनः आपकी भार्या होगी।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–ब्रह्माजी के द्वारा इस रीति से कहे हुए शम्भु नीचे की ओर मुख वाले, ध्यान में परायण होकर अमित ओज वाले ब्रह्माजी से बोले–हे ब्रह्मण! जब तक मैं सती के द्वारा किए हुए शोक से उत्तीर्ण होऊँ तब तक आप मेरे सखा हो व शोक का अपमोदन करिये। हे ब्रह्माजी! उस अवसर पर मैं जहाँ-जहाँ पर भी गमन करूँ वहाँ-वहाँ पर भी आप भी गमन करके मेरे इस दुस्सह शोक की हानि करिए। तात्पर्य यही है कि मेरे ही सर्वदा साथ रहकर जहाँ पर भी मैं जाऊँ वहीं पर मेरे शोक का विनाश करने की कृपा करें। लोकेश ब्रह्माजी ने 'ऐसा ही होवे' यह वृषभवाहन से कहकर अर्थात् मैं आपके साथ में सर्वत्र रहकर आपके शोक का विनाश करूँगा। फिर ब्रह्माजी ने भगवान् शम्भु के ही साथ में कैलाश गिरि पर जाने का मन किया था। ब्रह्माजी के साथ भगवान शम्भु को कैलाश पर्वत की ओर गमन करने के लिए उत्सुक देखकर जो नन्दी और भृंङ्गि आदिगण थे वे भी यह देखकर वहाँ प्राप्त हो गये थे। फिर एक विशाल पर्वत के ही समान वृषभ विधाता के सामने उपस्थित हो गया था जिस तरह से सिताभ के सदृश गैरिक होवे। वासुकि आदि जो शर्व थे उन सबने यथास्थान पर भगवान् शम्भु की बहुत शीघ्र वहाँ आकर शिव के शिर और बहु आदि से उनको विभूषित कर दिया था। कथन का अभिप्राय यही है कि वासुकी प्रभृति सब सर्प वहाँ आकर शिव के करादि अंगों के आभूषण हो गये थे।

इसके अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और सती के पति महादेव समस्त देवों के समूह के साथ हिमवान् पर्वत पर चले गए थे। इसके पश्चात् गिरि अपने नगर से निकलकर उन औषधियों के प्रस्थों को अपने आत्माओं के सहित सुरोत्तमों के सामने उपस्थित हुए थे। इसके अनन्तर उस गिरिराज के द्वारा वे सभी सुरगण पूजे गये थे और सबका एक ही साथ अभ्यर्चन किया गया था। वहाँ पर उस देवों के यजन करने में सभी सचिव और पुरवासीगण भी सम्मिलित थे। वे सुरगण ही बहुत प्रसन्न हुए थे। फिर वहीं पर उस गिरीन्द्र के नगर में भगवान् हर ने उस

औषधियों के प्रस्थ पर सखियों के साथ गौतम की आत्मजा विजया का अवलोकन किया था। उसने भी उन समस्त सुरों को प्रणिपात करके हर से कहा था। गिरीश से अपनी माता की भगिनी सती के विषय में पूछती हुई ने क्रोध किया था। हे महादेव! आपकी वह सती कहाँ पर है मेरे हृदय से दुःख दूर नहीं हट रहा है। मेरे ही आगे पहले समय में उसने जिस समय में कोप से प्राणों को त्यागती है उसी समय में शोकरूपी शल्य से विद्ध होकर सुख को प्राप्त नहीं करती हूँ। इतना कहकर वस्त्र के छोर से मुख को ढककर अधिक रूदन करती हुई भूमि पर गिर पड़ी थी और बहुत दुःख को प्राप्त हो गई थी।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–इसके पश्चात् उस समय में दाक्षायणी का स्मरण करते हुए उसको भूमि पर गिरी हुई देखकर उस समय में शोक से समुत्पन्न उद्वेगयुक्त रज्ज को शिव सहन न कर सके थे। जिनका धीरज एकदम ही नष्ट हो गया था ऐसे भगवान् शम्भु वाष्पों से व्याकुल लोचनों वाले हो गए थे अर्थात् उनके नेत्रों से अविरल अश्रु प्रवाह चलने लग गया था। सभी देवों के देखते हुए वे भगवान् शिव चिन्ता के ध्यान में तत्पर हो गये थे। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने शोक से कथित विजया को ढाढ़स बँधाकर फिर भगवान् शंकर को समाश्वासन देते हुए सान्त्वना से साथ यह वचन कहने लगे थे। ब्रह्माजी ने कहा–भगवान्! आप पुराने योगी हैं। आपको ऐसा शोक करना युक्त प्रतीत नहीं होता है। आपका ध्यान तो परधाम में ही था फिर यहाँ पर सती में कैसे हो गया? आप तो निरञ्जन हैं और आप बड़े-बड़े यतियों के ध्यान में जानने के योग्य हैं। आप पर से भी पर हैं, आपका स्वरूप निर्मल है तथा आप सर्वत्र गमन के स्वभाव एवं शक्ति से समन्वित हैं। जो राग और लोभ आदि मल हैं उन मलों से आप विहीन रहने वाले हैं। ऐसा ही आपका स्वरूप है उसे ही आप अपनी बुद्धि से ग्रहण कीजिए।

प्राणी के अन्दर रहने वाले ज्ञान के विनाश करने वाले निम्नलिखित चौदह दोष हुआ करते हैं। वे ये हैं–शोक, लोभ, क्रोध, मोह, हिंसा,

मान (मैं बहुत ही महान् हूँ, ऐसा मान मन में रखना), दम्भ अर्थात् याषाणु, मद, प्रमोद, ईर्ष्या, असूया, अक्षान्ति और असत्यता। आप तो विष्णु के ही स्वरूप वाले जगतों के विधाता हैं अर्थात् जगतों की रचना करने वाले हैं। जो भी आपको महान् मोह कर देने वाली सती हैं, यह तो आपकी ही लोकों के मोह के लिए माया है। जो समस्त लोकों को जन्म में और गर्भ में पूर्व देह की बुद्धि को विमोहित करती हुई, विनाश करके बाल्य अवस्था में जन्तु का पालन किया करती है आज वह भी शोक से सहित आपको विमोहित कर रही है। प्रत्येक कल्प में पहले आपने सहस्त्रों सतियों का त्याग किया था जो मृत हो गई थीं। इस प्रकार से चर-अचर लोक के हित के ही सम्पादन करने के लिए उसी भाँति आपके द्वारा यह सती पुनः ग्रहण की गई थी। हे वृषभध्वज! आप ध्यान के योग द्वारा देखिए दूसरे जन्म में जो सहस्त्रों सतियां मृत हुई हैं आप यथा तथा परिवर्जित हैं अथवा जैसी की तैसी वह हैं। क्योंकि वह पुनः समुत्पन्न होकर हे ईश! वह आपको ही प्राप्त करेगी। जो आप देवगणों के द्वारा भी दुष्प्राप्य होते हैं और फिर वह जैसी जाया आपको होने वाली है। यह सभी कुछ आप ध्यान के योग द्वारा देख लीजिए।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा-इस रीति से ब्रह्माजी ने बहुत प्रकार से ज्ञान को भगवान् शंकर से कहा था। फिर उस गिरिराज ने नगर से उनको निर्जन स्थान में गत कर दिया था। इसके उपरान्त हिमवान् के प्रस्थ में और उनके नगर के पश्चिम दिशा में द्रुहिण आदि ने शिव नाम वाला परिपूर्ण एक सरोवर देखा था। उस परम एकान्त स्थान की प्राप्ति करके ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवों ने वहाँ पर उपसेवन किया था अर्थात् वहाँ पर बैठ गए थे और जैसा भी न्याय था उसी के अनुसार उन्होंने महेश्वर को अपने आगे बिठा लिया था। वह शिव नाम वाला सरोवर बहुत ही सुन्दर था जो सभी देहधारियों में मन को हरण करने वाला था। उसका जल ठंडा और निर्मल था। वह सरोवर अपने सभी गुणों से मानस सरोवर के तुल्य था। भगवान् शम्भु उस सरोवर को

देखकर एक क्षण पर्यन्त उसके देखने में उत्सुकता से रुक गए थे। उसी सरोवर से एक शिप्रा नाम वाली नदी निकली हैं और वह दक्षिण सागर को जा रही थी, जो जगत् के जनों को पावन कर रही थी, ऐसा उन्होंने वहाँ पर देखा था। उस पूर्ण सरोवर के पास जाकर अनेक देशों से समागत हुए परमाधिक सुन्दर दर्शन करते हुए बहुत से पक्षियों को शम्भु ने अवलोकन किया था।

वहाँ पर विराजित होकर उन्होंने गम्भीर वायु से एवं सम्पन्न तरंगों में चक्रवाक के जोड़ों को नृत्य करते हुए देखा था। उन शम्भु भगवान ने चक्षुओं से तरंगों को पृथक-पृथक देखा था जिस तरह से जल से पुनः उत्पन्न करते हुए पक्षियों को देखा हो। प्रत्येक तट पर श्रेणी में आबद्ध हुए कादम्ब, सारस और हंसों के द्वारा अंगीकृत वह सागर जैसा हो वैसा ही वह सरोवर था। जिसको शिव ने देखा था। बड़े-बड़े मत्स्यों से युक्त अर्थात् बड़ी मछलियों के उछालों से क्षोभ को प्राप्त हुए जल के शब्द से भय उत्पन्न होने वाले पक्षियों के द्वारा विहित शब्द वहाँ पर हो रहा था। वहाँ पर उस मन के हरण करने वाले दृश्य का अवलोकन किया था। विकास को प्राप्त हुए कमलों से और वहीं पर मनोहर जलों से वह सरोवर परम शोभित हो रहा था। जिस तरह से स्थूल और सूक्ष्म नक्षत्रों से स्वर्ग शोभयमान हुआ करता था। बड़े-बड़े कमलों के मध्य में विरले ही नीलकमल उसमें दिखलाई दे रहे थे और वह ऐसे ही शोभा से संयुक्त थे जैसे नक्षत्रों के मध्य में नीलमेघ का खण्ड शोभित हुआ करता है।

पद्मों के समूह के मध्य में संस्थित हम किन्हीं के द्वारा प्रस्तुत नहीं हो रहे थे क्योंकि उनमें भी विकसित कमलों की भ्रान्ति होती थी\अर्थात् उन हँसों को भी जो कमलों के बीच में स्थित थे खिले हुए कमल की समझा जा रहा था। वे स्वर्गवासियों के द्वारा निश्चल ही दिखाई दे रहे थे। दो प्रकार के रक्त और शुक्ल वर्ण के विकसित पद्मों को देखकर ब्रह्माजी ने अपने आसन के कमल में काम में उत्फुल्लत्व और अरुणत्व की अर्थात् विकास और लालिमा की निन्दा की थी। महादेवजी ने उस

सरोवर के विकसित महोत्पल का अवलोकन करके उन्होंने हाथ में स्थित कमल का कुछ भी मान नहीं किया था क्योंकि वह हाथ के कमल की कान्ति मस्तक में स्थित चन्द्रमा की कान्ति से मलिन हो गया था। भगवान् हरि ने अपने सुदर्शन चक्र से सूर्य की किरणों से विकसित हाथ में रहने वाले कमल को ओर सरोवर के पद्म को सब ओर देखकर सदृश ही माना था। उस सरोवर को जो नाना भाँति के पक्षियों से समाकुल, सम्पूर्ण सैकड़ों ही कमलिनिओं से संच्छन्न (ढका हुआ) और नीलोत्पलों के समूह से युक्त था, देखा था। वह सरोवर तट पर देवदारु के वृक्षों के प्रसूनों में रहने वाले परागों से सुगन्धित जल से समन्वित था और देखने वालों के हृदय को महान आनन्द को उत्पन्न करने वाला था। उस सरोवर के प्रत्येक तट पर महान विशाल वृक्ष थे और वह शाद्वलों से भी परिवारित था अर्थात् उसके किनारे शाद्वलों से चारों ओर घिरे हुए थे। ऐसे उस सुन्दर सरोवर की शोभा को देखकर शम्भु क्षण भर के लिए उत्सुकता से युक्त तथा शोक से रहित हो गये थे। तात्पर्य यही है कि उस सरोवर की सुषमा से शम्भु का शोक मिट गया था और एक विशेष उत्सुकता उनके हृदय में उत्पन्न हो गई थी।

क्षिप्र पर्वत और क्षिप्रा नदी की कथा

भगवान् महेश्वर ने उस सरोवर से निकली हुई शिप्रा नदी का अवलोकन किया था जिस प्रकार से इन्द्र मण्डल से भागीरथी गंगा और मेरु पर्वत से जम्बु नदी निकलती है, उसी भाँति भगवान् शम्भु से शिप्र से शिप्रा को विनिसृत किया था। ऋषियों ने कहा—शिप्र नाम वाला सरोवर कौन-सा है और किस प्रकार से उससे शिप्रा नदी निःसृत हुई थी? इसका प्रभाव किस प्रकार का है, यह सभी कुछ आप विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे मुनिगणों! अब आप लोग श्रवण कीजिए कि जिस प्रकार से शिप्रा नदी निःसृत हुई थी। हे महाभागों! यह भी सुनिए कि उस शिप्रा का क्या प्रभाव

है क्योंकि मैं यह सभी आप लोगों को बतला रहा हूँ। जिस समय से वशिष्ठ जी ने देवी अरुन्धती का विवाह किया था। हे द्विजो! उसी समय में वैवाहिक जलों से शिप्रा नदी समुत्पन्न हुई थी। वह समागत होकर शासन से शिप्र सरोवर में गिरी थी जिस प्रकार से भागीरथीं गंगा भगवान विष्णु के चरणों से शिव जल वाली सागर में पतित हुई थी।

पहले समय में देवों के उपयोग करने के लिए ही धाता ने इसका विशेष निर्माण किया था जो हिमवान् के शिखर पर एक महान शिप्र नाम वाला सरोवर है। वहाँ पर आज भी अप्सरागणों के सहित इन्द्र देव अपनी शची को साथ में लेकर उस परम शुभ जल में रमण किया करते हैं। आज तक भी वह देवों के द्वारा एक रत्न की ही भाँति सर्वदा यत्न के साथ रक्षित हुआ करता है। वहाँ पर तप के प्रभाव से मुनिगण इस परमशुभ सरोवर में गमन किया करते हैं। महान् यत्न से ही वे लोग शिप्रा नाम वाले सरोवर के उसके जल में स्नान करने के लिए तथा पान करने को जाया करते हैं। वहाँ पर मनुष्य हैं जो योग से उसके जल का स्नान तथा पान करके अविकल इन्द्रियों वाले होते हुए अवश्य ही देव के स्वरूप को प्राप्त हो जाया करते हैं। हे द्विजोतमों! यह सरोवर वर्षा ऋतु में भी वृद्धि को प्राप्त नहीं होता है। तात्पर्य यह है कि अन्य प्राकृत जलाशयों के समान यह सरोवर का जल नहीं बढ़ा करता है और यह गर्मी की ऋतु में शोषण को भी प्राप्त नहीं हुआ करता है। यह तो सर्वदा ही जैसा है वैसा ही रहा करता है। न घटता है और न कभी बढ़ता ही है।

हे द्विजश्रेष्ठों! शिप्र के गर्भ के मध्य में स्थित जल प्रतिदिन बढ़ता था। वहाँ पर उस बढ़े हुए जल को पहले भगवान् हरि ने अपने चक्र के द्वारा लोकों की भलाई करने की भावना से गिरि के शिखर का भेदन करके उस नदी को परमपुण्य करके पृथ्वी की ओर प्रेरित कर दिया था। जाह्नवी गंगा के ही समान फल देने वाली वह नदी स्नान करने वालों को पवित्र करती हुई दक्षिण सागर को चली गयी थी। क्योंकि वह नदी शिप्र नाम वाले सरोवर से ही समुत्पन्न हुई थी अर्थात्

वह महानदी शिप्र से निकली थी अतएव उसका 'शिप्रा' यह शुभ नाम पूर्व में ही ब्रह्माजी ने रखा था। जिसमें कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि के दिन जो भी कोई मनुष्य स्नान किया करता है वह मनुष्य अत्यन्त देदीप्यमान विमान के द्वारा भगवान् विष्णु के लोक में गमन किया करता है। तात्पर्य यही है कि इस महानदी में कार्तिक मास की पूर्णमासी में स्तवन करने का ऐसा फल हुआ करता है कि वह सीधा विष्णु लोक की प्राप्ति कर लिया करता है। पूरे कार्तिक मास में शिप्रा नदी के जल में जो भी मनुष्य स्नान किया करता है वह सीधा ही ब्रह्माजी के लोक को चला जाया करता है और कुछ समय तक वहाँ दैविक सुखों का भोग करके पीछे संसार के जन्म और मृत्यु के निरन्तर आवागमन से मुक्त होकर मोक्ष की प्राप्ति कर लिया करता है। ऋषिगणों ने कहा–महामुनि वशिष्ठ जी ने किस प्रकार से अरुन्धती देवी के साथ विवाह किया था? हे ब्रह्मण, वह अरुन्धती किसकी पुत्री समुत्पन्न हुई थी? यह सभी आप कृपा करके हमको वर्णन करके समझाइए।

वह परमश्रेष्ठा देवी अरुन्धती तीनों लोकों में पतिव्रता नारियों में बहुत ही अधिक प्रसिद्ध हुई थी। वह ऐसी ही पतिव्रता नारी थी कि अपने पतिदेव के चरणों के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थान में अपने नेत्रों से नहीं देखा करती थी। जिस देवी अरुन्धती को केवल कथा का ही श्रवण करके जो कि महात्म्य के सहित है स्त्रियाँ स्मरण करके यहाँ सतीत्व को प्राप्त करती हुई मरकर भी अन्य जन्म में भी सतीत्व को प्राप्त किया करती हैं। कालधर्म को समासन्न होने वाला पुरुष जिसका दर्शन नहीं किया करता है तथा जो भी शुचि होता है वह पुरुष पापकारी होता है। वह देवी के जन्म का वर्णन आप हमारे समझ में करने की कृपा करिए। मार्कण्डेय ऋषि ने कहा था–आप लोग भली-भाँति श्रवण कीजिए जैसें वह समुत्पन्न हुई थी और जिस प्रकार से उस देवी ने अपने पति के स्वरूप वशिष्ठ मुनि को प्राप्त किया था और जो वह प्रसिद्ध पतिव्रता हुई थी। जो सन्ध्या पहले ब्रह्माजी पुत्री मन से ही समुत्पन्न हुई थी उसने तपस्या का तपन किया था और वहीं

शरीर का त्याग करके पीछे अरुन्धती नाम वाली हुई थीं। वह मेधातिथि की पुत्री होकर वह सती ब्रह्मा, विष्णु और महेश के वचन से सचरित्र व्रत वाली मुनियों में श्रेष्ठ की सती हुई थी। उसने ही संशित व्रतों वाले महात्मा वशिष्ठ का पति के स्वरूप में वरण किया था अर्थात् स्वयं ही वशिष्ठ को अपना पति बनाना स्वीकार किया था।

ऋषियों ने कहा–उस संध्या ने किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए कहाँ पर किस प्रकार से तप किया था? फिर क्यों अपने शरीर का परित्याग किया था और वह कैसे मेधातिथि की पुत्री होकर समुत्पन्न हुई थी ? कैसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश देवों के द्वारा कहे हुए परम संशित वाले सुन्दर महात्मा वशिष्ठ मुनि को उसने पति के स्थान में वरण किया था ? हे द्विजोत्तम! इस चरित्र को श्रवण करने की इच्छा वाले हमको यह सब विस्तार के साथ कहने की कृपा कीजिए। महासती अरुन्धती देवी के चरित्र के सुनने के लिए हमारे हृदय में बड़ा भारी कौतुहल हो रहा है। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–ब्रह्माजी ने भी पहले अपनी पुत्री सन्ध्या को देखकर कामवासना के लिए अपना मन किया था और फिर सुता का त्याग कर दिया था। काम के उस प्रकार के भाव को जो मुनियों के हृदय में भी मोह के करने वाला है वहाँ पर उसको सन्ध्या ने स्वयं ही देखा था। तब वह परम दुःखिता होकर लज्जा को प्राप्त हो गई थी अर्थात् स्वयं ही लज्जा आ गई थी।

इसके अनन्तर ब्रह्माजी के द्वारा कामदेव को शाप दे देने पर तथा विधाता के अन्तर्धान हो जाने पर और भगवान् शम्भु के अपने स्थान पर चले जाने पर वह मनस्विनी सन्ध्या एक क्षण पर्यन्त शीघ्र ही पूर्व में होने वाले वृत्त का ध्यान करती हुई वह सन्ध्या परायण हो गई थी। इस महापाप का प्रायश्चित मैं स्वयं ही करूंगी और वेद मार्ग के अनुसार अपने आपको अग्नि में हवन कर दूँगी अर्थात् अग्नि में जलकर अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगी। इस भूमण्डल में मैं एक प्रकार की मर्यादा की स्थापना करूँगी कि जिससे उत्पन्न होते ही शरीरधारी कामदेव से युक्त न होवे। इसी के लिए मैं परमाधिक दारुण

अर्थात् कठिन कष्टप्रद तप का समाचरण करके मर्यादा की स्थापना करके ही इसके पश्चात् अपने जीवन का त्याग करूँगी। जिस मेरे शरीर में मेरे पिता ब्रह्माजी ने अपने मन को अभिलाषा से समन्वित स्वयं किया था जब उस शरीर से भाइयों के साथ कुछ प्रयोजन भी नहीं है। जिस अपने शरीर के द्वारा सहज स्वीय तात में काम का भाव उद्भावित कर दिया गया था वह शरीर कभी सुकृत की साधना करने वाला नहीं है। इस प्रकार से संध्या मन के द्वारा भली-भाँति चिन्तन करके वह परम श्रेष्ठ पर्वत पर चली गयी थी जो चन्द्रभाग नाम वाला था और जिससे चन्द्रभाग नाम वाली नदी निकली थी। सवर्ण समान और समुदित चन्द्र से जिस रीति से उदयपर्वत निरन्तर शोभित हुआ था ठीक उसी भाँति उस संध्या के द्वारा वह पर्वत उस समय समाधिष्ठित हुआ और शोभित हुआ।

चन्द्रमा को शाप का वर्णन

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर उस श्रेष्ठ पर्वत की ओर गमन की गयी संध्या को देखकर जो कि तपश्चर्या करने के लिए नियत आत्मावाली थी, ब्रह्माजी ने अपने सुत से कहा था। वह पुत्र वशिष्ठ मुनि थे। वशिष्ठ संशित आत्मावाले, सब कुछ ज्ञान रखने वाले, ज्ञानयोगी, समीप में ही सुसमासीन और वेदों तथा वेदों के अंग शास्त्रों में पारगामी थे। ब्रह्माजी ने कहा—हे वशिष्ठ! आप जाइए जहाँ पर मनस्विनी सन्ध्या ने गमन किया है। वह संध्या तपस्या करने के लिए इच्छा रखने वाली हैं। आप जाकर इसको विधि के अनुसार दीक्षा दीजिए। पहले यहाँ पर कामुकों को देखकर उसको लज्जा हो गयी थी। हे मुनिश्रेष्ठ! उसने आपको, मुझको और अपने आपको सकाम ही देखा था अर्थात् सभी के अन्दर कामवासना का अवलोकन किया था। पूर्व में होने वाले आयुक्त रूप ने संयुत कर्म को विचार करके वह हमारे और अपने भी प्राणों का भली-भाँति परित्याग करने की इच्छा करती है। इस प्रकार से जो मर्यादा से रहित पुरुष हैं उनमें वह

तपश्चर्या के द्वारा ही मर्यादा की स्थापना करेगी। वह साध्वी तपस्या करने के लिए ही इस समय चन्द्रभाग पर्वत पर गई है। हे तात! वह तपस्या के किसी भी भाव को नहीं जानती है इस कारण से वह जिस प्रकार से उपदेश को प्राप्त कर लेवे आप वैसा ही करिए।

आप भी अपने इस वर्तमान रूप का परित्याग करके अन्य रूप धारण करके उसके समीप में तपश्चर्या का निर्देश कीजिए। आपके इस स्वरूप को देखकर पूर्व में जैसे वह लज्जा को प्राप्त हुई थी उसी भाँति अब इस लज्जा को पाकर आपके आगे वह कुछ भी नहीं कहेगी। आप अपने रूप का त्याग करके ही अन्य रूप वाले बन जावें। फिर उस महाभाग वाली सन्ध्या के लिए उपदेश देने को गमन करें। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–'ऐसा ही होगा', यह कहकर वशिष्ठ भी जटाधारी ब्रह्मचारी बन गये जो एकदम तरुण था। मुनि वशिष्ठ चन्द्रभाग पर्वत पर उस संध्या के समीप में गये थे वहाँ पर देवसर ऐसे परिपूर्ण था जैसे गुण में मानसरोवर ही होवे। इसके उपरान्त उस वशिष्ठ मुनि ने इस सरोवर के तट पर गमन करती हुई उस सन्ध्या को देखा था। वह कमलों से समुज्जवल सरोवर तट पर समवस्थित उसके द्वारा उसी भाँति शोभयमान हो रहा था जैसे प्रदोष के समय उगे हुए चन्द्रमा और नक्षत्रों मुनि ने सम्भाषण किया था। वहाँ पर मुनि ने वृहल्लोहित नाम वाला सरोवर भी देखा था।

उस सरोवर से चन्द्रभागा नदी दक्षिण सागर को जाती हुई थी जो उस पर्वत के महान शिखर का भेदन करके ही जा रही थी। वह नदी चन्द्रभागा पश्चिम शिखर का भेदन करके ही वहन कर रही थी जैसे हिमवान् पर्वत से गंगा सागर को गमन करती है। ऋषियों ने कहा–हे विपेन्द्र! चन्द्रभागा उस महागिरि में कैसे समुत्पन्न हुई थी। वह सर भी कैसा था जिसका नाम वृहल्लोहित है। वह चन्द्रभाग नाम वाला पर्वत पर्वतों में श्रेष्ठ कैसे हुआ था और चन्द्रभागा नाम वाली वृषोदका नदी किससे उत्पन्न हुई थी? इस सबके श्रवण करने की इच्छा होते हुए हमारे हृदय में बड़ा भारी कौतुक है। हम चन्द्रभागा का महात्म्य तथा गिरि के

सार का महत्व भी सुनना चाहते हैं। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–हे मुनिसत्तमों! अब आप लोग चन्द्रभागा की उत्पत्ति और चन्द्रभागा का महात्म्य तथा नामकरण भी श्रवण कीजिए। हिमवान् पर्वत से संयुक्त अर्थात् लगा हुआ, सौ योजन के विस्तार वाला और तीस योजन आयाम अर्थात् चौड़ाई वाला एक कुन्द तथा इन्दु के समान धवल श्वेत गिरि है।

उस पर्वत का पहले विधाता ने शुद्ध सुधा के निधि चन्द्रमा को विभाग करके उसे पितामह देवान्न कल्पित किया था। कमल के आसन वाले ब्रह्माजी ने उसी भाँति पितृगण के लिए तिथियों की क्षीणता व वृद्धि के स्वरूप वाला जगत के हित सम्पादन के लिए कल्पित किया था। हे द्विज श्रेष्ठो! उस जीमूत में चन्द्रमा विभक्त किया गया था। इसीलिए देवों ने पहले समय में उस गिरि को नाम से चन्द्रभाग किया था। ऋषियों ने कहा–यज्ञों के भागों में स्थित रहने पर तथा क्षीरसागर से समुत्पन्न अमृत के रहने पर कमलासन (ब्रह्मा) ने किसलिए चन्द्र का देवान्न किया था? उसी भाँति क्रम के रहते हुए किस कारण से पितृगण के लिए उसे कल्पित किया गया था? हे ब्रह्मन्! यह हमको बड़ा संशय हो रहा है। उसको आप हमको सूर्य की ही भाँति छेदन करिए। द्विजोत्तम! आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी इसका छेदन करने वाला नहीं है।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–प्राचीन समय में प्रजापति दक्ष के परमसुन्दरी सत्ताईस अश्विनी आदि अपनी पुत्रियों को सोम के लिए प्रदान की थीं। उन समस्तों को ही विधि के साथ सोम ने अपने साथ विवाह लिया था। उस समय में दक्ष के अनुमत में वह सोम सबको अपने स्थान में ले गया। इसके अनन्तर चन्द्र उन समस्त कन्याओं में राग से रोहिणी के ही साथ निवास करता था और रसोत्स व कला आदि के द्वारा रमण किया करता था। वह सोम केवल रोहिणी का ही सेवन किया करता था और रोहिणी के साथ ही आनन्द मनाया करता था। रोहिणी कि बिना सोम कुछ भी शान्ति की प्राप्ति नहीं किया

करता था। रोहिणी ही में परायण रहने वाले चन्द्र को देखकर वह सब कन्याएं अनेक प्रकार के उपचारों के द्वारा चन्द्रमा की सेवा करने लगी थीं। प्रतिदिन उनके द्वारा निषेवित होते हुए भी चन्द्र ने उनमें कुछ भी भाव नहीं किया था तो उस समन में वे सब अमर्ष के वश में समागत हो गयी थीं। इसके अनन्तर उत्तराफाल्गुनी नाम वाली, भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, मघा, विशाखा, उत्तराभाद्रपद, ज्येष्ठा और उत्तराषाढ़ा ये नौ बहुत ही अधिक कुपित हो गयी थीं। वे सब चन्द्र के समीप जाकर चारों ओर से कहने लगी थीं।

निशानाथ को परिवृत करके फिर उन्होंने रोहिणी को देखा था जो उस चन्द्रमा के वाम अंक में स्थित थी और उसके द्वारा अपने मण्डल में रमण करने वाली थी। उन सबने उस वर्णिनी रोहिणी को उस प्रकार की देखकर वे सब हवि से हुताशन की भी भाँति क्रोध से अत्यधिक जल गयी थीं। इसके अनन्तर जिसके तीन पूर्व में है ऐसी पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा के सहिम मघा, भरणी और कृत्तिका ने चन्द्र की गोद में स्थित महाभागा रोहिणी को हठ से पकड़कर ग्रहण कर लिया और वे अतीव कुपित होती हुई रोहिणी के प्रति कठोर वचन कहने लगी थीं। हे बुद्धि वाली! तेरे जीवित रहते हुए चन्द्र हम लोगों में बिल्कुल भी अनुराग नहीं करता। जब भी किसी समय में यह चन्द्र सुरत में उत्सुक होकर समुपस्थित होगा तभी बहुतों के क्षेम की वृद्धि के लिए हम उस दुष्ट बुद्धि वाली का हनन कर देंगी। तुझको मारकर हमको कुछ भी पाप नहीं होगा क्योंकि तू बहुत सी स्त्रियों के प्रजनन का हनन करने वाली तथा बिना ही ऋतुकाल के पाप करने वाली है। जिस अर्थ के विषय में पहले ब्रह्माजी ने अपने पुत्र के प्रति कहा था। नीति शास्त्र के उपदेश के लिए वह निश्चय ही हमारा सुना हुआ है।

दोषयुक्त कर्म करने वाले किसी एक दुष्ट के जहाँ पर प्रवृत्त हो जाने से यदि बहुतों का क्षेम होता है तो उसका वध पुण्य ही प्रदान करने वाला हुआ करता है वहाँ किसी भी पाप के होने का तो प्रश्न ही नहीं होता है। जो स्वर्ण की चोरी करने वाला है, जो मदिरा का पान

करने वाला है, जो ब्राह्मण की हत्या करने वाला है, जो गुरुपत्नी के साथ संगम करने वाला है और जो अपने आपका घात करने वाला हो, इन सबका वध करना पुण्य ही प्रदान करने वाला होता है।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–उन सबके इस प्रकार के अभिप्राय को समझकर और कर्म को देखकर तथा भय से डरी हुई रोहिणी को देखकर जो उसकी अत्यधिक प्रिय और मन को रमण करने वाली परम सुन्दरी थी, उस सबसे सम्भोग को न करने से उत्पन्न क्षाभ व अपने आपको अपराधी सोचकर उस डरी हुई रोहिणी को उनके हाथ से मोचन कर दिया था अर्थात् छुड़ा लिया था। उस चन्द्र ने रोहिणी को छुड़ाकर अपनी दोनों बाहुओं से उसका (रोहिणी) भली-भाँति आलिंगन करके उस चन्द्र ने जो कृत्तिका आदि भामनियाँ थी उस सबका धारण कर दिया था। इस भाँति इन्दु का धारण करती हुई कृत्तिका आदि से लेकर मघा से अन्त तक भामिनियों ने उस रोहिणी को देखती हुई को मनस्विनियों से साम्य वचन कहे थे। हे निशानाथ! हम सबका निरसन करने वाले आपको न तो कुछ लज्जा ही है और न पाप से कोई डर ही है। आप तो एक प्राकृत अर्थात् साधारण जन की ही भाँति बरताव कर रहे हैं।

हम सब चारित्र व्रत के धारण करने वाली है अर्थात् हमारे अन्दर चरित्र सम्बन्धी कोई भी दोष नहीं है फिर ऐसी हम सबका निराकरण करके जो सर्वदा ही आपकी भक्ति करने वाली है फिर क्यों आप मूढ़ मानव की भाँति इस एक ही रोहिणी का सदा सेवन किया करते हैं अर्थात् इसी से प्रणयानुराग करते हैं ? क्या आपको धर्म का ज्ञान नहीं हुआ है जो पहले वेदों के मूल वाला सुना गया है जो कि आप तत्पुरुषों के द्वारा निन्दित और धर्म से हीन कर्म को आप कर रहे हैं ? धर्मशास्त्र के अर्थ को गमन करने वाले कर्म को यथोचित रीति से करने वाली और उद्वाहित अर्थात् ब्याही हुई पिता का आप केवल मुख भी नहीं देखते हैं। हे निशापते! पूर्व में कहते हुए पिता के मुख से नारद के लिए जो सुना है उस दक्ष प्रजापति के धर्म-शास्त्र के अर्थ का आप श्रवण

कीजिए। जो पुरुष बहुत सी दाराओं वाला हो और राग के वशीभूत होकर उनमें से किसी भी एक ही स्त्री का सेवन किया करता है वह पाप का भागी होता है और स्त्री के द्वारा जित भी हुआ करता है तथा उसका अशौच सनातन अर्थात् सर्वदा ही बने रहना वाला हुआ करता है। हे विधो! स्त्रियों को जो स्वाम्य सम्भोगज दुःख हुआ करता है उस दुःख के समान अन्य कोई भी दुःख नहीं हुआ करता है। जो पुरुष परम सती और ऋतुकाल वाली पत्नी का संग नहीं किया करता है, ऋतुकाल के शुद्ध होने पर भी उसके संग से रहित होता है, वह भ्रूण ही होता है। भ्रूण गर्भ में रहने वाले शिशु को कहते हैं।

जितने समय तक भार्या आत्रेयी होती है उतने ही समय पर्यन्त निबोधन है। उस भार्या संग में कुछ विहित का आचरण न करना चाहिए। बहुत-सी भार्याओं वाले पुरुष का जो ऋतुकाल के मैथुन का विनाश है वह शास्त्र के द्वारा भी कथित कुछ भी कर्म नहीं होता है। विधि के साथ विवाहित भार्याओं का निरन्तर तोष करना चाहिए। अन्य प्रकार से कल्याण करने वाले पुरुष का भी उन भार्याओं की तुष्टि से कल्याण होता है। भार्या के द्वारा तो भर्ता सन्तुष्ट हो और भर्ता के द्वारा भार्या संतुष्ट होवे, जिस कुल में यह नित्य ही होता है वहाँ पर निश्चित रूप से ही कल्याण रहा करता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। सौभाग्य के मद से अहंकार वाली जिस पत्नी के द्वारा सपत्नी का संगम करने के लिए भर्ता का विरोध किया जाया करता है वह स्त्री दूसरे जन्म में वैश्या हुआ करती है और उसको अधर्म भी होता है। ऐसी स्त्री का तथा पिता का कुल दोनों ही प्रसन्न नहीं हुआ करते हैं। पति के विरुद्ध मान होने पर जो सपत्नी के साथ प्रवृत्त होता है उस अकल्याण करने वाले दोनों को ही अधिक दुःख हुआ करता है।

मार्कण्डेय ऋषि ने कहा–इस रीति से उनके द्वारा बहुत अधिक कठोर वचन कहने पर चन्द्रमा रोहिणी के मुख की कान्ति को मलिन देखकर बहुत ही अधिक कुपित हुए थे। उस समय में रोहिणी ने भी उन सबकी उग्रता को बारम्बार देखकर वह भी भय, शोक और लज्जा

से समाकुल होकर कुछ भी नहीं बोली थी। इसके अनन्तर परमाधिक क्रोधी हुए चन्द्र ने उसी समय में उन सब स्त्रियों को शाप दिया था क्योंकि तुम सबने मेरे ही आगे अतीव उग्र और तीक्ष्ण वचन कहे हैं। इन तीनों भुवनों में कृत्तिका आदि आपकी उग्र और तीक्ष्ण यही गति देवगणों में भी प्राप्त करोगी। इस कारण से ये नौ कृत्तिका प्रभृत्ति दिन यात्रा में उपयुक्त नहीं होगी। तुम सबको देवी देव आदि और क्षिति में मनुष्य आदि देखते हैं तो उसी दोष से यात्रा में उन पुरुषों की यात्रा अभीष्ट के प्रदान करने वाली नहीं हुआ करती है। इसके उपरान्त उन सबों ने उसके अति दारुणी शाप को सुनकर इस शाप के देने से चन्द्रमा के हृदय को बहुत ही अधिक निष्ठुर जान लिया था।

उस समय वे सब अति कुपित होकर दक्ष प्रजापति के भवन को चली गयी थीं और वहां पर अश्विनी आदि ने अपने पिता दक्ष से कहा था– सोम हमारे साथ निवास नहीं करते हैं और वे सदा ही एक रोहिणी का ही सेवन किया करते हैं। हम लोग सभी उनकी सेवा भी करती हैं तो भी वे पराई वधू की ही भाँति हम से अनुराग न करके हमारा सेवन नहीं किया करते हैं। अवस्थान में, अवसान में तथा भोजन में और श्रवण करने में चन्द्रदेव रोहिणी के साथ निवास करते हुए समीप में आपकी इन पुत्रियों को देखकर रोहिणी के बिना कोई भी शान्ति की प्राप्ति नहीं किया करते हैं। वह अन्य स्थान में गमन करती हुई को देखकर नयन का आधान करके नहीं देखा करते हैं। इस वस्तु में जो भी कुछ करना चाहिए वह हमारे द्वारा चन्द्र अनिरुद्ध हुए हैं उस समय उसने हमारे लिए तीव्र शाप किया था। चन्द्रदेव ने कहा था कि आप लोग अत्यन्त दारुण और तीक्ष्ण होती हुई शोक में वाच्यत्व को प्राप्त करके बिना यात्रा वाली हो जाओगी।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–उस प्रजापति दक्ष ने अपनी पुत्रियों का वाक्य सुनकर और उनको ही साथ में लेकर उसी स्थान पर गये थे जहाँ चन्द्रदेव रोहिणी के साथ उस समय में वर्त्तमान थे। चन्द्रमा दूर से आते हुए दक्ष को देखकर अपने आसन से उठ खड़े हुए थे और समीप

जाकर उन महामुनि के लिए प्रणिपात किया था। इसके अनन्तर उस समय अपने आसन को ग्रहण करके दक्ष प्रजापति ने भली भाँति वन्दना करने वाले चन्द्रमा से सामपूर्वक यह कहा था—आप अपनी भार्याओं मे समानता का ही व्यवहार करिए और विषम व्यवहार का परित्याग कर दीजिए। विषमता में ब्रह्माजी ने बहुत से दोष परीकीर्त्तित किये हैं। दाराओं में काम के अनुबन्धन से वे दारारति और पुत्र की कला वाली होती हैं। काम का अनुबन्धन संसर्ग से ही होता है और वह ससर्ग संगम मे हुआ करता है और संगम अभिध्यान और वीक्षण से समुत्पन्न होता है इस कारण मे आप भार्याओं में अभिध्यान और वीक्षण आदि करिए। यदि इस मेरे धर्म से नियन्त्रित वचन को आप नहीं करते हैं तो उस समय में आप लोक के वचनों से दोषयुक्त और आप वाले हो जायेंगे।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—महात्मा दक्ष के उस वचन का श्रवण करके चन्द्रदेव ने भी 'ऐसा ही होगा'—यह दक्ष की शंका से कह दिया था। इसके अनन्तर दक्ष प्रजापति ने अपनी पुत्रियों को तथा जामाता इन्दु को अनुमन्त्रित करके उस समय में वह मुनिकृतकृत्य होकर अपने आश्रम को चले गये थे। दक्ष के चले जाने पर फिर चन्द्रमा ने उस रोहिणी के पास प्राप्त होकर उसमें और उन शेष पत्नियों से पूर्व जैसा ही भाव ग्रहण किया था क्योंकि रोहिणी में उसका अनुराग था। वहीं पर रोहिणी को प्राप्त करके अन्य किसी को भी वह नहीं देखता था। वह सर्वदा रोहिणी ही में निवास किया करता था। फिर वे सब कुपित हो गई थीं। वे सब अपने दुर्भाग्य के कारण उद्विग्न मन वाली होती हुई पिता के समीप में जाकर उन्होंने कहा था कि सोमदेव हम लोगों में निवास न करते हैं और वे सदा ही रोहिणी का सेवन किया करते हैं। उसने अपने वाक्य को भी ग्रहण नहीं किया। अतएव आप हमारे रक्षक होओ। उसी क्षण में मुनि उस उद्वेग और क्रोध से संयुत होकर उठ खड़े हुए थे और मन में विधु के समीप में जाकर क्या करना है इसका ध्यान करते जा रहे थे।

उस समय प्रजापति दक्ष चन्द्र के समीप में पहुँचकर यह वचन उन्होंने चन्द्रदेव से कहा था कि अपनी भार्याओं में समानता का ही व्यवहार करिए तथा उनके प्रति जो भी कुछ विषमता की भावना होवे उसका आप अब परित्याग कर दीजिए। यदि आप हमारे वचनों को मूर्खता से नहीं समझते हैं तो हे निशापते! मैं धर्मशास्त्र के अतिक्रमण करने वाले आपके लिए शाप दे दूंगा। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इसके अनन्तर चन्द्रदेव ने उस प्रजापति के सामने वैसा ही करने के लिए स्वीकार किया था क्योंकि उनको दक्ष से अत्यधिक भय था। 'इसी प्रकार से किया जायेगा' ऐसा पुनः स्वीकार कर लिया था। फिर अपनी भार्याओं में विषय में समान ही व्यवहार करने के लिए चन्द्र के द्वारा अंगीकार किये जाने पर दक्ष चन्द्र से सहमत होकर अपने स्थान को चले गये थे। दक्ष के गमन करने पर निशानाथ चन्द्र फिर अत्यधिक रूप से रोहिणी के ही साथ में रमण करता हुआ उसने उस प्रजापति दक्ष के वचन को भुला ही दिया था कि मैं सब भार्याओं में एक सा व्यवहार करूँगा। वे अश्विनी आदि सभी मनोरम उनकी सेवा करने वाली हुई थीं किन्तु चन्द्र ने उनका कभी सेवन नहीं किया था और वह केवल उन सबकी अवज्ञा ही किया करता था। वे चन्द्रदेव के द्वारा अवज्ञासंयुत होकर अपने पिता से यह बोली थीं।

उन्होंने कहा था कि हे मुनिश्रेष्ठ! आपके वचन को भी सोमदेव ने नहीं किया है और वह तो अब पहले से भी अधिक हमारे विषय में अवज्ञा किया करते हैं। सोम के द्वारा हमारे विषय में जो भी करना चाहिए वह कुछ भी नहीं होता है। अतएव अब हम तो सब तपस्विनी हो जायेंगी। आप हमको वही निर्देश कीजिए। तपस्या के द्वारा अपनी आत्माओं का शोधन करके हम अपना जीवन ही त्याग देंगी। हे द्विजोत्तमो! आप ही विचार कीजिए कि ऐसी दुर्भाग्यशालिनी हमको जीवन रखने से क्या लाभ है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–फिर यह इतना कहकर वे सभी कृत्तिका प्रभृति दक्ष की पुत्रियाँ अपने करों से कपोलों का आलम्बन करके विवश होती हुई भूमि पर रूदन करने वाली थीं।

अतीव दुःख से व्याकुल इन्द्रियों वाली इस प्रकार से स्थित उन सबको देखकर अत्यन्त दीन मुख वाले प्रजापति कोप से वह्नि के ही समान ज्वलित हो गये थे। इसके अनन्तर कोप से व्याप्त महात्मा दक्ष की नासिका के अग्रभाग से बहुत ही भीषण यक्ष्मा निकल पड़ा था। वह यक्ष्मा दाढ़ों से कराल मुख वाला था और कृष्ण वर्ण वाले अंगार के समान था वह बहुत ही लम्बे विशाल शरीर वाला था उसके केश बहुत ही थोड़े थे वह अतीव कृश और धमनियों से संतत था।

उसका मुख तो नीचे की ओर था, उसके हाथ में एक दण्ड था, वह विश्राम करके निरन्तर कास (खाँसी) को करता जा रहा था, उसके नेत्र नीचे की ओर बैठे हुए थे तथा वह स्त्री के साथ सम्भोग करने के लिए अत्यन्त लालायित रहता था। उस यक्ष्मा ने दक्ष प्रजापति से कहा था—हे मुनि! मैं अब किस स्थान में स्थित रहूँगा अथवा मुझे क्या करना होगा? हे महामते! आप मुझे यह अब बतलाइए। तब तो प्रजापति दक्ष ने उस यक्ष्मा से कहा था कि आप बहुत शीघ्र सोमदेव के समीप में जाइये। आप सोमदेव का भक्षण करिये और उसी सोम में स्वेच्छा से सदा संस्थित रहिए। मार्कण्डेय ऋषि ने कहा—इसके अनन्तर महामुनि दक्ष के इस वचन को श्रवण करके वह धीरे-धीरे सोमदेव के समीप गया था और वह सोम का गद (रोग) ही था। उस समय में वह सोम के समीप में इसी भाँति प्राप्त हुआ था जैसे सर्प अपनी बाँबी में प्रवेश किया करता है। वह महागद अर्थात् विशाल रोग चन्द्रमा के हृदय में छिद्र की प्राप्ति करके प्रवेश कर गया था। उस दारुण राज्यक्ष्मा के उस सोम के हृदय में प्रविष्ट हो जाने पर चन्द्रदेव मोहित हो गये अर्थात् उनको मोह हो गया था और वह बहुत बड़े विषम तन्द्र को प्राप्त हो गया था। क्योंकि यह रोग प्रथम उत्पन्न होकर उस राजा में लीन हो गया था। हे द्विज! इस कारण से उस रोग की लोक में 'राजयक्ष्मा' इस नाम से प्रसिद्धि हो गयी थी।

इसके अनन्तर वह सोम (रोहिणी का पति) उस राजयक्ष्मा नामक रोग के द्वारा अभिभूत हो गया था और वह प्रतिदिन ग्रीष्म ऋतु में क्षुप्र

नदी की ही भांति क्षय रोग को प्राप्त होने लगा था। इसके अनन्तर उस चन्द्र के क्षीय माण हो जाने पर समस्त औषधियाँ क्षय को प्राप्त हो गयीं थीं। उन औषधियों के क्षय को प्राप्त हो जाने पर यज्ञ नहीं प्रवृत्त होते थे। यज्ञों का अभाव हो जाने से देवों का सब अन्य भी क्षय को प्राप्त हो गया था। तब तो सभी मेघ नष्ट हो गये थे और वृष्टि का एकदम अभाव हो गया था अर्थात फिर वर्षा नहीं हुई थी। जब वृष्टि का ही अभाव हो गया तो लोगों के व्यवहार क्षीण हो गये थे। हे द्विजोत्तमो! दुर्भिक्ष (अकाल) और उसके कारण से होने वाले व्यसन (दुःख) से समस्त रोग हो गये थे। तब तो लोगों का दान देना और धर्म के कृत्य करना सभी कुछ लोक के लिए प्रवृत्त नहीं होता है। समस्त प्रजा सत्त्व से हीन हो गयी थी और सब लोभ से उपहृत इन्द्रियों वाले हो गये थे। वे सभी प्रजायें कुकर्मों में रति रखने वाली हो गई थीं तथा सभी सागर और ग्रह भी क्षुभित हो गये थे। इसके अनन्तर जगत् को अधिक व्याकुल और दस्युओं (चोर लुटेरों) से प्रपीड़ित देखकर चन्द्र को अपना नायक बनाते हुए सब देवगण ब्रह्माजी के समीप में गये थे।

इस सृष्टि की रचना करने वाले, जगतों के स्वामी देवेश्वर ब्रह्माजी के पास पहुँचकर उन्होंने उनको प्रणाम किया तब वे सब यथोचित स्थानों पर उपविष्ट हो गये थे। लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने सब देवों को मलिन मुख वाले देखकर जो कि ऐसे प्रतीत होते थे मानों किसी दूसरे के पराभूत हैं और अपने विषयों को अपहृत किए हुए से दिखाई पड़ रहे थे। तब तो ब्रह्माजी ने देवों के गुरु बृहस्पति इन्द्र और अग्नि को आमने सामने बिठाकर उनसे पूछा था। ब्रह्माजी ने कहा हे देवगणों! आपका मैं स्वागत करता हूँ अर्थात् आपका यहाँ पर समागम परम शुभ मानता हूँ। आप लोग अब यह बतलाइये कि आप सब किस प्रयोजन को सुसम्पन्न करने के लिए यहाँ आये हैं? मैं देख रहा हूँ कि आप सभी लोग किसी महान दुःख से उपहृत देहों वाले हैं और आप अधिक म्लान हो रहे हैं। आप सबको बाधाओं से रहित, आतंक से हीन तथा

इच्छानुसार गमन करने वाले बनाकर और अपने विषय में विन्यस्त करके आज से आप लोगों को परम दुःखित कैसे देख रहा हूँ ? जो भी कुछ आप लोगों के दुःख का बीज अर्थात् हेतु होवे अथवा जो भी कोई आप लोगों को बाधा पहुंचाता होवे वह सभी आप लोग पूर्ण रूप से मुझे बतलाइए और यही समझ लीजिए कि वह आपका कार्य सिद्ध हो ही गया है अर्थात् उसका मैं निवारण करके आपको सुख सम्पन्न ही बना दूँगा, इनमें कुछ भी संशय न समझें। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर वृद्ध श्रवा, जीव और लोकों का भरण करने वाले कृष्णवर्मा ने उन ब्रह्माजी से देवों के दुःख का कारण बतलाया था।

देवों ने कहा—हे जगत् की रचना करने वाले! आपके समीप में जिस कार्य के सम्पादन के लिए हम लोग समागत हुए हैं उनका आप श्रवण कीजिए जो कि हम लोगों के दुःख का बीज है और जिसके होने से हम सब लोग म्लानश्री वाले हो रहे हैं। हे पितामह! कहीं पर भी लोक में यज्ञ सम्प्रवर्तित नहीं हो रहे हैं अर्थात् कोई भी किसी जगह पर लोक में यज्ञ नहीं कर रहे हैं। समस्त प्रजा इस समय निरातंक और निराधार होकर क्षय को प्राप्त हो रही है। भूमण्डल में न तो कोई दान देता हैं और न कोई धर्म सम्बन्धी कर्म करता है, न तप है अर्थात् कोई भी तपस्या भी नहीं कर रहा है। मेघ लोक में वर्षा नहीं करते हैं, समस्त पृथ्वी क्षीण जल वाली हो गयी थी। सभी औषधियाँ क्षीण हो गयी हैं शस्य भी क्षय को प्राप्त है और लोक सभी समाकुल हैं। विप्रगण दस्युओं के द्वारा पीड़ित होते हुए वेदों के बाद में नियत नहीं हो रहे हैं। अन्न की विकलता को प्राप्त करके बहुत-सी प्रजा मर रही है। यज्ञ भोगों के क्षीण हो जाने पर हम सभी लोग भोगने के योग्य पदार्थों से हीन हो रहे हैं। हम बहुत ही दुर्बल हो गए हैं और हमारी कान्ति नष्ट हो गई है। हम कहीं पर भी शान्ति की प्राप्ति नहीं कर रहे हैं। चन्द्रदेव तो रोहिणी के ही मन्दिर में सदा वक्रगति से चिरकाल पर्यन्त स्थित रहा करते हैं और वृष राशि के वह क्षीण होकर ज्योत्सना (चाँदनी) से हीन रहते हैं। देवी के द्वारा जिस समय में भी चन्द्र का अन्वेषण किया जाता

है तो वह कभी भी इनके आगे स्थिति वाला नहीं हुआ करता है। वह किसी समय में भी देवों के समाज में अथवा आप के समीप में उपस्थित नहीं हुआ करता है।

वह किसी समय भी रोहिणी का त्याग करके वहीं पर भी गमन नहीं किया करता है। यदि कोई भी अन्य नहीं होता है तभी चन्द्र बाहर जाया करता है। वह चन्द्र समस्त कलाओं से हीन केवल एक ही कला वाला रह गया है अर्थात केवल एक ही कला उसमें शेष रह गई हैं। हे लोकों के ईश! यही सर्वत्र लोक में कर्म का विपर्यय प्रवृत्त हो रहा है। तात्पर्य यही है कि सभी कर्म विपरीत हो रहे हैं। यह ऐसा है उसको देखकर हम सब कान्दिशीक हो रहे हैं अर्थात् किस ओर जावें, ऐसे कर्त्तव्यविमूढ़ होकर हम सब आपकी ही शरणागति में प्राप्त हुए हैं। जब तक पाताल लोक से उठकर काल कञ्जरादि असुर हे लोकेश्वर! हमको बाधा पहुँचाते हैं तब तक आप भय से हमारी रक्षा कीजिए। यह जगतों का अतिक्रम किस कारण से हो गया है यह हम नहीं जानते हैं। इस विप्लव का क्या कारण है यह भी हम नहीं जानते हैं। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–दिव्यदर्शी पितामह ब्रह्माजी ने देवों के इस वचन का श्रवण करके एक क्षण पर्यन्त ध्यान करते हुए सुरोत्तम से कहा–ब्रह्माजी ने कहा हे देवताओं! जिस कारण यह लोकों का विप्लव हो रहा है उसका आप श्रवण करिए। देव सोम ने दाक्षायणी सत्ताईस संख्यावाली अश्विनी आदि का श्रेष्ठ वधू के रूप में भार्या बनाने के लिए उनके साथ परिणय किया था।

उस सोम ने उस सबके साथ परिणय करके वह चन्द्र केवल रोहिणी में ही निरन्तर अनुराग से प्रवृत्त हुआ था और अन्य सब में यह अनुराग नहीं किया था। वे सब अश्विनी आदि कन्यायें ज्वर से प्रपीड़ित थीं। वे छब्बीस वर आरोहण वाली कन्यायें पिता के समीप में आ गयी थीं। जिस प्रकार से निशानाथ अनुराग से रोहिणी में प्रवृत्त होता रहता है उस भाँति उन सबका सेवन नहीं किया करता है। यह सब उस प्रजापति दक्ष से निवेदन कर दिया था। इसके अनन्तर महा

बुद्धिमान दक्ष ने सोम के द्वारा चन्द्रदेव की स्तुति करके और बहुत अधिकासूनृत वचनों से सम्भाषण करके अपनी पुत्रियों के लिए अनुरोध किया था। तब महात्मा के द्वारा अनुरुद्ध होकर चन्द्र ने उन सब में समान ही प्रवृत्त होने की प्रतिज्ञा की थी। चन्द्रदेव ने उन सबमें समान भाव रखने की बात स्वीकार करने पर वह मुनि श्रेष्ठ दक्ष भी अपने निवास स्थान को चला गया था। उस मुनि श्रेष्ठ दक्ष प्रजापति के चले जाने पर चन्द्र ने उनमें विषमभाव का त्याग नहीं किया था और वे फिर निरन्तर क्रोधित होकर अपने पिता के समीप में गई थीं।

इसके अनन्तर पुनः दक्ष ने दूसरी सुताओं के विषय में अनुरोध किया था और समान व्यवहार रखने की प्रतिज्ञा कराकर उसने यह वचन कहा था कि हे चन्द्र! यदि आप समान व्यवहार नहीं करेंगे और आप यदि इन सब ही में अनुराग न करेंगे तो मैं आपको शाप दे दूँगा। इस कारण से जो समुचित हो वही आप व्यवहार सभी के प्रति करिए।

इसके उपरान्त दक्ष के चले जाने पर उस चन्द्र ने समान बर्ताव नहीं किया तो पुनः दक्ष के समीप में जाकर क्रोध के साथ कहने लगीं। वह चन्द्रदेव आपके कथित वचनों का सत्कार नहीं करते हैं और वे हम सबमें प्रवृत्त नहीं होते हैं अर्थात् हम सबका सेवन अभी भी नहीं किया करते हैं। अतएव अब हम सब तपश्चर्या करेंगी और आपके ही समीप में स्थित रहा करेंगी। अपनी उन पुत्रियों के इस वचन का श्रवण करके महामुनि दक्ष परम क्रोधित हो गये थे और फिर चन्द्रदेव के क्षय करने के लिए शाप देने को उत्सुक हो गये थे। हे महामुने! शाप देने के लिए उद्यत मन वाले और महान कुपित हुए उन दक्ष प्रजापति की नासिका के अग्रभाग से क्षय नाम वाला एक महान रोग निकल पड़ा था। उस महारोग को चन्द्रदेव के लिए प्रेरित कर दिया गया था जो कि मुनिवर दक्ष के ही द्वारा भेजा गया था। वह महारोग चन्द्रदेव के देह में प्रवेश कर गया था और उसने चन्द्र को क्षयित कर दिया था।

चन्द्रमा के क्षीण हो जाने पर महात्मा की ज्योत्सना (चाँदनी) भी क्षय को प्राप्त हो गयी थी। ज्योत्सना के क्षीण हो जाने पर समस्त

औषधियाँ भी क्षय को प्राप्त हो गयी थीं। औषधियों के अभाव से ही इस लोक में यज्ञों की सम्प्रवृत्ति नहीं हुआ करती है। यज्ञों के न होने ही से वृष्टि का अभाव हो रहा है और समस्त प्रजाओं का क्षय हो रहा है। यज्ञ के भागों के उपयोग से हीन आप लोगों की दुर्बलता समुत्पन्न हो गई और स्वगोचर से विकार को गया है। यही सम्पूर्ण हमने आपको बतला दिया है जिस रीति से लोकों में विप्लव हो रहा है। हे सुरोत्तमों! अब यह भी आप लोग श्रवण कर लीजिए कि जिस उपाय से इस विप्लव की शान्ति होगी।

ब्रह्माजी ने कहा—हे सुरगणों! अब आप सब लोग दक्ष प्रजापति के गृह को चले जाइए और उनको प्रसन्न करिए कि चन्द्रदेव का अर्थात उनके क्षीण होने का महारोग दूर हो जावे। चन्द्रदेव के परिपूर्ण हो जाने पर सम्पूर्ण जगत् प्रकृति में स्थित हो जायेगा और आपको भी शान्ति की प्राप्ति हो जायेगी तथा समस्त औषधियों की समुत्पत्ति भी हो जायेगी। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—ब्रह्माजी के इस वचनामृत का श्रवण करके समस्त देवगण जिनमें इन्द्रदेव सबके आगे चलने वाले नायक से परम प्रसन्न मन वाले होते हुए उस समय में दक्ष प्रजापति के सदन अर्थात निवास स्थान पर गए थे। वहाँ पर सब सुरगणों ने नीति के अनुसार उपस्थान करके मुनिवर प्रजापति दक्ष को प्रणाम करके बहुत ही विनम्रता संयुत मधुर वाणी से उन्होंने कहा। देवों ने कहा—हे ब्राह्मण! अत्यन्त दुःखित हमारे ऊपर प्रसन्न होइये, हे महाबुद्धे ! हमारी इस शोक के सागर से रक्षा कीजिए और उद्धार करिए। सृष्टि की रचना करने वाले परमात्मा का ब्रह्मा संज्ञा वाला जो रूप है उन्हीं के अंश समस्त जगतों के आप परम ज्योति हैं। हे विप्ररूप! आपके लिए हमारा नमस्कार है। प्रजा की रक्षा करने से और प्रजा के पालन करने के कारण से दक्ष और प्रजापति आप योगेश हैं, आपको हम प्रणाम करते हैं।

समस्त जगतों की रक्षा के लिए और कुशल आत्मा वालों के लिए तथा आत्मा के हित के लिए, दक्ष के लिए, महात्मा के लिए शीघ्र

आपके लिए नमस्कार है। नियत इन्द्रियों वाले योगियों के द्वारा निरन्तर चिन्तन किये हुए सार का भी आप सारभूत हैं। ऐसे परमात्मा दक्ष के लिए नमस्कार है। योगियों की वृत्ति को अनाधृष्ट करके पारगामियों में परायण सहसा ही आद्यन्न कहा गया है उनके लिए नित्य ही नमस्कार है, नमस्कार है। इन प्रकार से कहे हुए उन यज्ञ के भागों का सेवन करने वालों के वचन को सुनकर दक्ष प्रसन्न मुखवाला होकर मुख्य रूप से इन्द्रदेव को सम्बोधित करके बोले। दक्ष ने कहा—हे महाबाहो! हे इन्द्रदेव! आपको यह महान् दुःख कैसे प्राप्त हो गया है ? हे विभो! आप इस दुःख का हेतु तो बतलाइए। मैं उसके श्रवण करने की इच्छा कर रहा हूँ। आप लोगों के दुःख को दूर करने के लिए मेरा क्या कर्त्तव्य होता है ? उसको यदि मैं कर सकता हूँ तो अवश्य ही करूँगा। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—उस महान आत्मा वाले ब्रह्माजी के पुत्र के वचन का श्रवण करके नीतिक्षेत्र वाक्पति इन्द्रदेव ने उस महामुनि से कहा था।

शचीपतिशक्र ने कहा—निशानाथा चन्द्रक्षयी अर्थात् क्षय होने वाला हो गया है। उसके क्षीण हो जाने पर सभी औषधियां क्षय को प्राप्त हो गई हैं। हे द्विजश्रेष्ठ, उनकी हानि यज्ञों की हानि करने वाली हैं। कुछ तो प्रजा वृष्टि के अभाव से महान दुःख को पाकर नष्ट हो गई है। यह निशानाथ चन्द्रमा का जो क्षय है वह आपके ही कोप से प्रवृत्त हो गया है और इस क्षय से पूरे जगत् का ही विनाश हो जायेगा। इस समय में ऐसा कुछ भी नहीं है जो क्षोभ से युक्त न हो। हे विप्रेन्द्र! इस समय सभी विलुप्त हैं चाहे स्थावर हो या जंगम होवे या पतंग ही होवे। इस समय से न तो यज्ञ सम्प्रवत्त हो रहे हैं और तापस गण ही तपश्चर्या किया करते हैं। आहार के अभाव के कारण होने वाले दुःख से समस्त प्रजा क्षीण और भय से आतुर हैं। हे विपेन्द्र! ऐसा प्रवृत्त होने पर इस रसातलिक से जब तक दैत्य उठकर बाधा नहीं पहुँचाते हैं तभी तक आप उद्धार कीजिए। हे दक्ष! चन्द्रदेव पर प्रसन्न होइए और अपने तप के बल से उसे पूर्ण बना दीजिए। चन्द्रदेव के परिपूर्ण हो जाने पर सम्पूर्ण जगत् प्रकृति में स्थित हो जायेगा।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इस प्रकार से उसके वचन का श्रवण करके उस समय में प्रजापति के उन सुरगणों से हृदय के शल्य का उद्धार करते हुए बोले। दक्ष प्रजापति ने कहा—जो मेरा वचन निशानाथ चन्द्र में शाप का व्यसन कर प्रवृत्त हुआ है उसको किसी भी निदान के द्वारा मैं मिथ्याभूत करने का उत्साह नहीं करता हूँ। किन्तु मेरा वचन एकान्त रूप से जिससे वृथा न होवे और चन्द्र भी बढ़ता रहे, जिससे वही उपाय देखिए। उसमें भी एक उपाय है कि जो चन्द्रमा मास के आधे भाग में क्षय और वृद्धि को प्राप्त होकर भार्याओं से समान बर्ताव करे। उस प्रजापति को प्रसन्न करके उसके उस वचन का श्रवण करके समस्त देवगण वहाँ पर गये थे जहाँ पर चन्द्रमा रहता है। हे द्विजो! दक्ष मुनि के द्वारा इस प्रकार से वचन के कहने पर इसके अनन्तर उस समय में भार्याओं के सहित चन्द्रमा का समादान करके वे परम प्रसन्न सुरश्रेष्ठ ब्रह्माजी के भवन में गये थे। हे महाभागो! वहाँ पर पहुँचकर जैसा दक्ष प्रजापति ने कहा था वह सभी परमात्मा ब्रह्माजी से उन्होंने कह दिया था।

उस समय में ब्रह्माजी देवों के मुख से दक्ष प्रजापति के वचन का श्रवण करके वे फिर सब सुरों के साथ चन्द्रभाग नामक पर्वत पर जो कि एक महान् पर्वत था वहाँ चले गये थे। वहाँ पर सुरों के श्रेष्ठ ने जाकर प्रजाओं के हित की कामना से वृहल्लोहित पुष्प में चन्द्रदेव को स्थापित कर दिया था। उस सरोवर में स्नान करने वाले जन्तु को निरोगता हो जाया करती है। बृहल्लोहित नाम वाले सरोवर में स्नान करने से प्राणी चिरायु अर्थात् बड़ी उम्र वाला हो जाया करता है। वहाँ पर स्नान किए हुए चन्द्र के शरीर से उसी क्षण में रोग निकल गया था जिसका नाम राज्यक्ष्मा था जैसा कि पूर्व रूप कहा गया है। राज्यक्ष्मा भी निकलकर जगत् के पति ब्रह्माजी को प्रणाम करके उससे बोला था कि मैं क्या करूँगा और कहाँ पर जाऊँगा। क्योंकि आप इस सम्पूर्ण जगत् के सृजन करने वाले हैं अतएव हे लोकेश! मेरा सनातन कृत्य-स्थान और पत्नी को मेरे ही अनुरूप निर्देश कीजिए।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर चन्द्रमा के शरीर में स्थित

अभियुक्त अमृतों से परिपुष्ट उसको देखकर और क्षीण हुए चन्द्रमा को देखकर उन्होंने स्वयं ही हाथों से उसका ग्रहण करके गिरि में बारम्बार निष्पीडित किया था और उस राजयक्ष्मों के शरीर से उस अमृत को गालित किया था। उस समय में जो शीघ्र ही अमृत जल में गलित किए गये थे। लोकभृत ने क्षीरसागर के मध्य में एकान्त में प्रक्षिप्त कर दिया था। जो पहले उसके उस अमृत से चन्द्र की कलाएं क्षीण हो गयी थीं उनके चूर्णों को क्षीरोद सागर से लव से ग्रहण किया था। राजयक्ष्मा के संसर्ग से एक कला मात्र ही शेष वाले इसकी क्षीण हुई पन्द्रह कलाएं जो पूर्व में अमृत से परिपूर्ण थीं वे राज्यक्ष्मा के गर्भ में स्थित थीं और पीड़ा से तृष्णीभूत थीं वे ज्योत्स्ना के अमृतों से जो कलपापति का निबद्ध शरीर था वह राजयक्ष्मा के गर्भ में स्थित तीन प्रकार का हो गया था।

वह ज्योति से परिपूर्ण हो गया था और ज्योत्स्ना राजयक्ष्मा में लीन हो गई थी और रोग के गर्भ में स्थित सम्पूर्ण सुधा द्रवीभूत हो गई थी। जिस समय ब्रह्माजी ने राजयक्ष्मा के अन्तर से सुधा को निर्गलित किया था उस समय समस्त ज्योत्सना सुधा की ज्योति उससे बहिर्गत हो गई थी। उसी समय विधाता के द्वारा वह सम्पूर्ण क्षीरोद सागर में प्रक्षिप्त कर दी गयी थी। उन देवों को उस पर्वत में परित्याग करके वह स्वयं वहाँ से शीघ्र ही गमन कर गये थे। इसके उपरान्त कलापूर्ण अमृतों का जल से प्रक्षालित करके उन तीनों को ग्रहण करके शीघ्र ही ज्योत्सना का भी प्रक्षालन करके उस गिरि पर समागत हो गए थे। उस समय विधाता क्षीरोद से चन्द्रभाग पर्वत पर पहुँचकर देवों के मध्य में ज्योत्स्ना कलाओं के चूर्ण में प्रवृष्टि हो गयी थी। ब्रह्माजी ने उन तीनों को संस्थापित करके वे देवों के मध्य में संस्थित हो गए थे। उसके स्थान आदि के विषय में निर्देश करते हुए उन्होंने राजयक्ष्मा से कहा था।

ब्रह्माजी ने कहा–हे राजयक्ष्मा! जो सर्वदा ही रात दिन व सन्ध्या के समय में वनिता में रत रहा करता है और उसमें सुरत को सेवन किया करता है वहाँ पर ही आप निवास करेंगे। जो प्रतिश्याय

(जुकाम-सर्दी) श्वास और कास से समन्वित होता हुआ भी मैथुन को समाचरण किया करता है और श्लेष्मा (कफ) का उसी प्रकार वाला हुआ करता है उसमें ही आपका प्रवेश होना चाहिए। जो कृष्णनाम वाली मृत्यु की पुत्री है और आपके गुणों के ही तुल्य है वही आपकी भार्या होवेगी जो निरन्तर ही आपका अनुगमन किया करेगी। आपका कर्म भी यही है कि जो क्षीणता करें उसी को आप अपना विषय बना लेवें। अब आप बहुत ही शीघ्र चले जाइए और आप चन्द्र से विमुख हो जाइए। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इस रीति से विधाता के द्वारा विदा किया गया महान रोग राजयक्ष्मा समस्त देवगणों के देखते हुए ही अन्तर्धान को प्राप्त हो गया था। उस महान रोग के अर्न्तधान हो जाने पर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को पन्द्रह कलाओं के द्वारा समृद्धिपूर्ण कर दिया था। फिर ब्रह्माजी ने सुता से पूत और क्षीरोद से धौत उसके द्वारा तथा ज्योत्स्ना के सहित कलाओं के चूर्णों से पूर्व की ही भांति चन्द्रदेव को कर दिया था। जिस समय में सोलह कलाओं से परिपूर्ण चन्द्र पूर्व की ही भाँति शोभित था उस समय में समस्त देवगण उसके दर्शन से बहुत अधिक प्रसन्न हुए थे। इसके अनन्तर उस पूर्ण चन्द्र ने पितामह के लिए प्रणिपात किया था। अत्यन्त हर्षित न होते हुए सुरों ने सभा के मध्य में संस्थित होते हुए यह वचन कहा था।

सोमदेव ने कहा–हे ब्रह्माजी! मेरे शरीर में पूर्व की ही भाँति श्यामलता नहीं है और न तो वैसा पराक्रम ही है और न वैसा उत्साह ही है। मेरे अंग की सन्धियाँ निषीदित हैं। मैं पहली की ही भाँति चेष्टायें करने के लिए सुनरा अर्थात् अपने आप ही उत्साहित नहीं होता हूँ। हे लोककृत! मैं निरन्तर चेष्टा से हीन होता हुआ किस कारण से रहता हूँ? ब्रह्माजी ने कहा–हे सोम! यक्ष्मा के द्वारा ग्रस्त आपकी जो अंग की सन्धियाँ हो गई हैं वे पूर्व में विकीर्ण हो गई हैं और अब वह पूर्णता को प्राप्त नहीं है। अब इस समय में मैंने आपसे देह का चूर्ण निकाल दिया है। राजयक्ष्मा के शरीर से अमृत की ज्योत्सना शीघ्र ही निकाल दी है। उनके प्रक्षालन की विधि में जो लव के रूप में जल

में स्थित है क्योंकि आप ज्योत्सना से और सुधा से उसी से हीन हैं। इसके उपरान्त आपकी अंग संधियां, हे राजन! इस समय में सीदित हो रही हैं। उपाय भी मैं करूँगा जिससे आप किसी पीड़ा को प्राप्त न होवें।

पुर के अध्वर में प्राजापत्य पुरोडाश का हवन करना चाहिए। इसके उपरान्त ऐन्द्र और पीछे आग्नेय सभी ऋतुओं में देना चाहिए। इसके अनन्तर आपका भाग पुरोडाश मैंने किया है। उस भाग के भोग करने वाले जो नित्य ही यज्ञ के द्वारा कृत है पूर्व की ही भाँति आपका उत्साह और श्याम वीर्य हो जायेगा। जो आपके अमृत के कण क्षीरोद के जल में स्थित हैं अथवा आपके शरीर का चूर्ण और ज्योत्सना के जो लव हैं। हे विभो! वह सब आपकी ज्योत्सना योग से अनुदिन वृद्धि को प्राप्त होगा जो निरन्तर क्षीर सागर के गर्भ में गमन करने वाला है। द्वितीय स्वरोचिष के अन्तर के प्राप्त होने पर शंकर के अंश से जायमान दुर्वासा विप्र सूर्य की ही भाँति प्रचण्ड और चण्ड होगा। उसने देवेन्द्र के अविनय से सदारुण शाप दे दिया था। सुर और असुरों से सहित तीनों भुवनों को बिना श्री वाला कर देगा फिर लोक के श्री से हीन होने पर लोक में विप्लव हो जायेगा। हे सोम! जिस तरह से आपके क्षय होने से सबका विप्लव प्रवृत्त हो गया था।

वह मनुष्य के प्रमाण से तीसरे कृत युग में होगा और जब तक चारों युग होंगे स्थित होगा। इसके अनन्तर देवों के साथ चतुर्थ कृतयुग के सम्प्राप्त होने पर मैं शम्भु और विष्णु क्षीरोद का निर्मन्थन करेंगे। मन्दराचल को मन्थन करके अर्थात् मथान करने का साधन बनाकर फिर वासुकि सर्प का नेतरा बनायेंगे। यज्ञ भागों के लीन होने पर देवान्न के लिए हम फिर देवों के साथ दानवों के साथ मिलकर क्षीरोद का मन्थन करेंगे। आपके शरीर का यह अमृत जो क्षीरसागर में स्थित है उसको प्रमथन करके हम राशिभूत तथा क्षय को ग्रहण करेंगे। उस समय में हम आपके शरीर को सर्वोषधियों के अनन्तर से करके हे विभो! आपके शरीर के लिए सागर के जल में प्रथिप्त कर देंगे। सागर का निर्मन्थन करके और पीछे जब अमृत का समुद्धरण करेंगे तो उस

समय आपका वपु पूर्व की ही भाँति सम्भूत होगा। ओज और वीर्य से अद्‌भुतकान्त अक्षय और सुधात्मक अर्थात् सुधा से परिपूर्ण हर अंग की सन्धियों वाला आपका शरीर परम सुन्दर हो जायेगा।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने इस प्रकार से सुधाँशु (चन्द्रमा) से कहकर चन्द्र के क्षय के लिए और आधे मास तक वृद्धि के लिए यत्नों वाले हुए थे। जैसा प्रजापति दक्ष ने कहा था कि चन्द्रमा आधे मास तक क्षय और वृद्धि को प्राप्त होवे उस मासार्ध में विधाता ने यत्न किया था। फिर सुरों में ज्येष्ठ ने चन्द्रमा को सोलह प्रकार से विभक्त किया था और ऐसा विभाग करके समस्त देवों से वे यह उत्तम वचन बोले थे। चन्द्रमा की सोलह कलायें हैं उनमें एक भगवान शम्भु के मस्तक में आज की अवधि पर्यन्त स्थित रहे और पराक्षय के बिना ही क्षय को प्राप्त होंवे। दक्ष के वाक्य से यदि क्षय रोग से मासार्ध तक क्षय के लिए चन्द्र प्रपीड़ित किया जाता है तो उस समय में उपशान्ति नहीं होगी किन्तु जिसकी जो कला शम्भु में है ज्योत्सना उसके ही प्रति गमन करे। हे सुरोत्तमो! प्रतिमास में चौदह कलाओं की संस्था है। आप लोग प्रतिपदा तिथि से आरम्भ करके चतुर्दशी पर्यन्त चतुर्दश की संस्थाओं से भी तथ्यों का पालन करें।

तेजों के लोग चतुर्दशी तिथि में क्रम से सूर्य के विम्ब में प्रवेश करें। इस प्रकार से कृष्णपक्ष में चन्द्र का क्षय होता है। शेष कला हरित्पत्र में पलायित दर्श में जावें। उस तिथि में निशापति के प्रथम भाग में स्थित रहे। द्वितीय दर्श भाग में रोहिणी के मन्दिर में गमन करे। तीसरे भाग में तो सरस्वती में स्नान करके चन्द्र समुस्थित होता है। विभावस्तु के चतुर्थ तिथि भाग में वह बल से सम्पूर्ण होता है। विम्ब में स्थित घोटक के सहित यह चन्द्रमा मण्डल में जावे। जितने समय पर्यन्त प्रथमा कला क्षय को प्राप्त होवे इसी प्रकार से कृष्णपक्ष में तब तक वह प्रतिपदा होती है। द्वितीयादि में कृष्णपक्ष में उसी प्रकार की वृद्धि तथा ह्रास होता है। तिथियों की वृद्धि का हेतु शुक्ल और कृष्ण में उसी भाँति होता है। इसके अनन्तर फिर शुक्ल पक्ष में जब तक पूर्व

कला उचित होती है तब तक वृद्धि को नहीं जाती है और आदि से प्रतिपदा तिथि है।

इसके अनन्तर द्वितीय भाग की जो ज्योत्स्ना भगवान हर के मस्तक में है और जो स्थित है वह जावे और गयी हुई वह फिर आ जायेगी। आपके द्वारा दिन-दिन में अमृत पीने के योग्य होता है। हे सुरोत्तमो! वह पूर्ण अन्त वाला द्वितीया आदि तिथियों से सदा ही चन्द्र स्वंय ही उत्पन्न होगा क्योंकि वहाँ पर ज्योत्स्ना का योग होता है उसी के उसी से उसकी समुत्पत्ति होगी। जिस प्रकार से दिन-दिन में भाग क्षण को प्राप्त होते हैं वे अनुचित चन्द्र की वृद्धि को प्राप्त होते हैं। हे सुरो! शुक्ल पक्ष में भी प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हुआ करते हैं। सूर्य के बिम्ब से तेज का भाग पुनः ही समागत होगा। जिस प्रकार से कृष्णपक्ष में उसी भाँति भाग के क्रम को प्राप्त होगा। भगवान् शम्भु के मस्तक में संस्थित चन्द्रमा से ज्योत्सना प्रति दिन पुनः आयेगी। सूर्य के बिम्ब से तेजोभाग स्वयं ही अमृत की वर्षा करता है। इसी प्रकार से शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की वृद्धि होगी। दोनों पक्षों में जो शुक्लत्व और कृष्णत्व के नाम हैं वे चन्द्रमा के क्षय और वृद्धि से ही हुआ करते हैं। जब चन्द्र वृद्धि को प्राप्त होता है तो उसे कृष्णा पक्ष पुकारा जाया करता है। जितने काल के द्वारा जो भाग क्षय और वृद्धि को प्राप्त होगा उतने ही काल को अभिव्याप्त करके वह तिथि फिर स्थित रहेगी।

चिरकाल में वृद्धि अथवा क्षय शीघ्रता से वृद्धि अथवा क्षय को द्रुत से अर्थात् शीघ्रता से तिथियों का सदा क्षय होता है और चिरकाल से तिथियों में प्रवेश में वृद्धि होती है। हव्य और कव्य चन्द्रदेव के बिना सम्भव नहीं होगा। इस कारण से उसकी वृद्धि के लिए हे देवताओं! आप लोग चन्द्रदेव की रक्षा करें। 100 अनुमास से कला शेष चन्द्रदेव का आस्वादन करना चाहिए। अमावस्या के अपरार्ध काल में तो वह पितृगणों के साथ रोहिणी के मन्दिर में रहता है। उसके ही आस्वादन से प्रतिदिन कला की वृद्धि हुआ करती है। उस कव्य से पितृगण भी परामृप्ति को प्राप्त होंगे। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा-इसके अनन्तर सभी

सुरगण जैसा भी विधाता ने कहा था वैसा ही उन्होंने चन्द्र की क्षय और वृद्धि के लिए लोक हित के स्वरूप चन्द्रमा के अर्धभाग को देवों सहित विधिपूर्वक अत्यन्त क्षुधित होकर शिर से ग्रहण किया था। जो तेज परनित्य अज, अव्यय और अक्षय है उस स्वरूप वाली ही चन्द्रमा की कला है जो प्राप्त हो गई थी।

जिस समय योगी की आनन्दज, अजर और पर ज्योति प्रवेश किया करती है उस समय में उनका चिन्तन लीनता को प्राप्त हो जायेगा। महादेव के मस्तक में विराजमान सुधा निधि के होने पर चित्त की लीनता में चन्द्र के द्वारा मुक्ति हो जाया करती है। इस प्रकार से यह वैदिकी श्रुति है। महादेव जी ने इसका ज्ञान प्राप्त करके क्षय और वृद्धि के अनिवाकृत चन्द्र को लोकों के हित के लिए शिर के द्वारा ग्रहण किया था। चन्द्रमा की ज्योत्स्ना के समायोग से औषधियाँ वृद्धि को प्राप्त हुआ करती हैं। सब औषधियों के प्रवृद्ध होने पर ही अध्वरों की प्रवृत्ति हुआ करती है। अध्वरों के प्रवृत्त हो जाने पर देवगण अपने-अपने भागों का परिग्रहण किया करते हैं और पितृगण बहुत से कव्यों को ग्रहण करते हैं। अमृत ब्रह्माजी ने देवगणों के लिए बहुत पुरातन सृजा था अब देवता लोग हव्यभाग से हीन हुये जो भी हैं वे उसके द्वारा ही तृप्ति का लाभ किया करते हैं। यज्ञ के आयातित भी वह ज्योत्सनाओं से निश्चय ही वृद्धि को प्राप्त होता है और वह यज्ञों की ज्योत्सना के विनाशभूत अन्यथा क्षीण हो जाया करता है।

अतएव यज्ञ के अमृत का कारण भी चन्द्रमा ही स्वयं होता है अतएव दक्ष प्रजापति के शाप से रक्षा के लिए चिकीर्षित होता है। आज भी कृष्णपक्ष में सुरगणों के द्वारा चन्द्र का पान किया जाया करता है। तेज तो सूर्य देव को चला जाता है और चन्द्र का अर्धभाग तथा उसकी ज्योत्सना भगवान शम्भुदेव के समीप में चले जाया करते हैं और फिर शुक्ल पक्ष में शेष कला उदित हुआ करती है। ज्योत्सना का दूसरा भाग और द्वितीय तेज का भाग और अन्य भी शिव के मस्तक में संस्थित चन्द्रमा से और क्रम से सूर्य के बिम्ब से चन्द्र की

सोलह कलायें हैं उनमें एक भगवान शम्भु के मस्तक में रहा करती है। शेष कलाओं के सित और असित अर्थात् शुक्ल और कृष्ण ये दोनों पक्ष उदय और क्षय वाले ही होते हैं। यह सब मैंने आपको बतला दिया है। जिस प्रकार से भी चन्द्रमा का विभाग किया गया है, जिस रीति से ब्रह्मा के द्वारा उस श्रेष्ठ पर्वत में चन्द्रमा समागत हुआ था। जिस कारण से यज्ञ भाग के स्थित होने पर विभु को देवों का अन्न किया था। जिस तरह से कव्य के स्थित होने पर भी पितृगण का अन्न तिथियों का क्षय और वृद्धि होता है। इस परम पुण्यतम आख्यान को जो भी कोई मनुष्य एक बार भी श्रवण कर लिया करता है उसके कुल में राजयक्ष्मा का महारोग कभी भी किसी को नहीं रहा करता है और न होता ही है। जो भी कोई मनुष्य राजयक्ष्मा से पराभूत है और विधाता के वचन का श्रवण कर लेता है तो उसका यक्ष्मा विनष्ट हो जाया करता है। यह आख्यान परमाधिक स्वस्ति अर्थात् कल्याण का स्थान है, पुण्यमय है और शुभ तथा गुह्य से भी अधिक गोपनीय है। जो भी कोई एकचित्त होकर इसको सुनता है वह महान् पुण्य का भागी होता है।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा--जहाँ पर सब महागिरि के शिखर पर देवों की सभा हुई थी वहाँ पर विधाता के वचन से सीता नाम वाली देव नदी समुत्पन्न हुई थी। जिस समय मनोहर सीता के जल से स्तवन कराकर उन सब देवगणों ने ब्रह्मा के वाक्य से चन्द्र का पान कर गये थे उस समय में सीता नदी का जल चन्द्रमा के स्नान के योग से वह अमृत होकर उस वृहल्लोहित संज्ञा वाले में निपातित हो गया था। उस समय में उसका जल बढ़ गया था और उस सरोवर में वह नहीं समाया था। उसको ब्रह्माजी ने स्वयं ही देखा था कि वह विशेष बढ़ा हुआ जल अमृत था। उसके देखने से उस जल से एक अत्युत्तम कन्या समुत्थित हुई थी। उस कन्या का नाम चन्द्रभागा था जिसको कि विधाता ने स्वयं ही रखा था। ब्रह्माजी की सहमति से सागर ने उसको अपनी भार्या बनाने के लिए ग्रहण कर लिया था। उसी के द्वारा अधिष्ठित जल को निशावर्ति ने गदा के अग्रभाग से भेदन करके

पश्चिम पार्श्व में उस गिरि के प्रति समवाहित कर दिया था।

उसके अमृत जल का भेदन करके वृहल्लोहित नाम वाला सरोवर कर दिया था और वह चन्द्रभाग नदी तो सागर को गमन करने वाली थी। उस समय सागर ने भी महानदी चन्द्रभाग भार्या को उस जल के प्रवाह से उसको अपने भवन में ले गया था। इसी रीति से उसमें चन्द्रभागा नाम वाली नदी समुत्पन्न हुई थी। वह चन्द्रभागा महान शैल में अपने गुणों के द्वारा सदा गंगा के ही समान थी। नदियां और सब पर्वत स्वभाव से ही दो रूपों वाले सदा हुआ करते हैं। नदियों का रूप तो उनका जल ही होता है तथा शरीर दूसरा ही हुआ करता है। पर्वतों का रूप को स्थावर ही होता है। इसी प्रकार से जल तथा उस समय में नदी और पर्वत का स्थावर होता है। उनका काम तो अन्तर में वास किया करता है और निरन्तर उत्पन्न नहीं होता है।

पर्वत का शरीर तो स्थावर के द्वारा ही आप्यायित होता है। उसी भाँति नदियों का शरीर जल के द्वारा ही सदा आप्यापित हुआ करता है। नदियों का तथा पर्वतों का रूप कामरूपी होता है। भगवान् विष्णु ने यत्नपूर्वक पहले जगत् की स्थिति के लिए ही कल्पित किया था। हे सुरगणों! जल की हानि होने पर निरन्तर ही नदियों को महान् दुःख हुआ करता है और विकीर्ण हो जाने पर स्थावर गिरि के शरीर में उत्पन्न होता है। उस पर्वत पर जो कि चन्द्रभाग नाम वाला था बृहल्लोहित के तट पर गमन करने वाली सन्ध्या का अवलोकन किया था और वशिष्ठ मुनि ने उस समय में बड़े ही आदरपूर्वक उससे पूछा था। वशिष्ठ जी ने कहा–हे भद्रे! आप इस निर्जन महान् गिरि पर किस प्रयोजन के लिए आयी हैं। हे गौरि! आप किसकी पुत्री हैं? और आपका क्या चिकीर्षित है अर्थात् क्या करने की इच्छा रखती हैं। यदि आपकी कोई भी गोपनीय बात न हो तो मैं यही सुनना चाहता हूँ। आपका मुख तो चन्द्रमा के समान परमाधिक सुन्दर है किन्तु इस समय में वह निःश्री सा क्यों हो रहा है? उन महात्मा वशिष्ठ मुनि के इस वचन का श्रवण करके उन महात्मा का अवलोकन किया था जो

प्रज्वलित अग्नि के ही समान थे। वे उस समय ऐसे ही प्रतीत हो रहे थे मानो शरीरधारी ब्रह्मचर्य के ही सदृश हों। उन जटाधारी को बहुत ही आदर के साथ प्रणिपात करके इसके पश्चात् उस संध्या ने उन तपोधन से कहा था।

वशिष्ठजी द्वारा सन्ध्या को दीक्षा देना

सन्ध्या बोली–जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिए मैं इस शैल पर समागत हुई थी वह मेरा कार्य सिद्ध हो गया है। हे द्विजोत्तम्! हे विभो! आपके दर्शन मात्र से ही वह कार्य पूर्ण हो जायेगा। हे ब्रह्मन्! मैं तपश्चर्या करने के लिए ही इस निर्जन पर्वत पर आई थी। मैं ब्रह्माजी के मन से समुत्पन्न हुई हूँ और मैं लोक में सन्ध्या इस नाम से प्रसिद्ध हूँ। यदि आपको कुछ गोपनीययुक्त होता हो तो आप मुझको उपदेश दीजिए। यही मेरा परम गुह्य चिकीर्षित है और दूसरा कुछ भी नहीं है। तपस्या के भाव का ज्ञान न प्राप्त करके ही मैंने इस तपोवन का उपाश्रय ग्रहण किया है। मैं चिन्ता से परिशुष्क हो रही हूँ और मेरा मन सदा ही काँपता रहता है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ठ जी ने उस संध्या के वचन को सुनकर उन स्वयं ही सम्पूर्ण तत्त्व के ज्ञाता मुनि ने उससे अन्य कुछ भी नहीं पूछा था। इसके अनन्तर उस समय वशिष्ठ मुनि ने उस नियत आत्मा वाली और तप के लिए अत्यन्त उद्यम धारण करने वाली उसको शिष्य-गुरु के ही समान वशिष्ठ ने मन्त्र दीक्षा दी थी।

वशिष्ठ मुनि ने कहा–जो महान् तेज परम है, जो परम महान् तप है, जो परम समाराधना करने के योग्य है उन भगवान विष्णु को ही अपने मन में धारण करिए। जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन परम पुरुषार्थों का एक ही आदि कारण है उन जगतों के आद्य पुरुषोत्तम प्रभु का यजन करो। जो भगवान विष्णु शंख, चक्र, गदा और पद्म को धारण करने वाले हैं और उनके लोचन कमलों के ही समान परम सुन्दर हैं उनका वर्ण शुद्ध स्फटिक के तुल्य है और कहीं पर उनकी

छवि नीले मेघ के सदृश ही है। गरुड़ के ऊपर स्थल में चिह्न वाले, परमशान्त और वनमाला के धारी, हरि का भजन करो। जो केयूर और कुण्डलों को पहिने हुए हैं, जो किरीट और मुकुट से समुज्ज्वल हैं, जो बिना आकार वाले केवल ज्ञान के द्वारा ही जानने योग्य हैं, जो आकार के सहित देवधारी हैं, नित्य आनन्दस्वरूप, बिना अवलम्बन वाले और सूर्य मण्डल के मध्य में संस्थित हैं ऐसे देवेश्वर विष्णु की इस मन्त्र के द्वारा ही हे शुभआनन वाली! आप यजन करो। वह मन्त्र 'ॐ नमो वासुदेवाय ॐ' यह है। इसी मन्त्र के जाप के द्वारा निरन्तर मौनी होकर तपश्चर्या का समारम्भ करो। उसमें कुछ नियम हैं उनका अब श्रवण करो।

नित्य स्नान मौन होकर करना चाहिए और मौन व्रत के साथ ही पूजन करें। प्रथम तो छठवें दोनों कालों में पूर्ण और फलों का आहार करें और तीसरे षष्ठ काल में उपवास परायण ही होना चाहिए। इस प्रकार से तप की समाप्ति में षष्ठ काल की क्रिया होती है। वृक्षों के छालों के वस्त्र धारण करें और उस समय पर भूमि में ही शयन करें। इसी रीति से मौनी रहें और तपस्या नाम वाली व्रतचर्या फल के प्रदान करने वाली होती है। इस तरह के तप का उपदेश करके इच्छापूर्वक माधव भगवान का चिन्तन करो। वे प्रसन्न होकर आपके अभीष्ट को शीघ्र ही प्रदान कर देंगे। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इसके अनन्तर वशिष्ठ जी ने उस संध्या के लिए तप करने की क्रिया का उपदेश देकर और उससे न्याय के अनुसार सम्भाषण करके मुनि वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे। उसने तपस्या के भाव का ज्ञान प्राप्त करके और परम आनन्द प्राप्त करके उसने वृहल्लोहित के तीर पर स्थित होकर तपश्चर्या करना आरम्भ कर दिया था। उसने वशिष्ठ मुनि ने जैसा कहा था उस मन्त्र को तथा तप के साधन को करके उसी व्रत से भक्तिभाव के द्वारा गोविन्द का पूजन किया था। परम एकान्त मन वाली को चारों युगों (सत्य, त्रेता, द्वापर, कलियुग) का समय व्यतीत हो गया था।

उसके इस अद्भुत तप को देखकर कोई भी विस्मय को प्राप्त हुए

बिना नहीं रहा था कि उस तरह की तपश्चर्या अन्य किसी की भी नहीं होगी। इसके अनन्तर मनुष्यों के मान से चारों युगों की एक चौकड़ी व्यतीत हो गई थी। फिर अन्दर-बाहर और आकाश में अपना वपु दिखला कर उस रूप से परम प्रसन्न हुए जिस रूप को उसने चिन्तन किया था वहीं उसके सामने प्रत्यक्षता को प्राप्त हो गये थे जो भगवान विष्णु इस जगत् के स्वामी थे। इसके अनन्तर अपने सामने अपने मन के द्वारा चिन्तन किए गए हरि को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुई थी। उनका स्वरूप शंख, चक्र, गदा और पद्म के धारण करने वाला था तथा वे किरीट और मुकुट से परम समुज्वल थे। पुण्डरीक के समान उनके नेत्र थे और वे गरुड़ पर विराजमान थे। उनकी छवि नीलकमल के समान थी। मैं भय के साथ क्या कहूँगी अथवा किस प्रकार से हरि भगवान का स्तवन करूँ इसी चिन्ता में परायण होकर उसने अपने नेत्रों को मूँद लिया था। मूँदे हुए लोचनों वाली के हृदय में भगवान ने प्रवेश किया था और उसमें उस संध्या को परम दिव्य ज्ञान को प्रदान किया था और उसकी दिव्य वाणी बोलने की शक्ति दी थी तथा दिव्य चक्षु भी प्रदान किए थे। वह फिर परम दिव्य ज्ञान, दिव्य लोचन और दिव्य वाणी को प्राप्त करने वाली हो गई थी। उसने प्रत्यक्ष में हरि को दर्शन कर उसका स्तवन किया था।

सन्ध्या ने कहा—जो बिना आकार वाले हैं, जो ज्ञान के ही द्वारा जानने योग्य हैं, जो सबसे परे हैं, जो न तो स्थूल हैं और न सूक्ष्म ही हैं तथा जो उच्च भी नहीं हैं, जिनका रूप योगियों के द्वारा अन्दर ही चिन्तन करने के योग्य है उन आप भगवान श्रीहरि के लिए मेरा नमस्कार है। जिनका स्वरूप शिव अर्थात् कल्याण स्वरूप है जो परम शान्त, निर्मल, विकारों से रहित, ज्ञान से भी परे सुन्दर प्रकार से युक्त, विसारी, रवि प्रख्य, ध्वान्त (अन्धकार) भाग से परे हैं उन परम प्रसन्न आपके लिए मैं प्रणाम करती हूँ। जो एक शुद्ध देदीप्यमान विनोद चित्त के लिए आनन्द, रूप, सत्य से समुत्पन्न, पापों का हरण करने वाला, नित्य ही आनन्दरूप, सत्य और बहुत ही अधिक प्रसन्न जिसका श्री का

प्रदाता यह रूप है उन प्रभु के लिए मेरा नमस्कार है। विद्या के आकार से उद्भावना करने के योग्य प्रकृष्ट रूप से भिन्नसत्व से छन्न-ध्यान करने के योग्य आत्मस्वरूप से समन्वित, सार, पार और पावनों को भी पवित्र करने वाला जिनका रूप है उनके लिए मेरा प्रणिपात है। योग मार्ग में युक्त पुरुषों के द्वारा गुणों के समूह आठ अंग वाले योग से जो नित्यार्चन और व्यय से हीन चिन्तन किया जाता है, जिसकी योगीजन अपने ज्ञान योग में व्यापी तत्त्व को प्राप्त करके परात्पर को प्राप्त हुए हैं, जो शुद्ध रूप वाले हैं और जो मनोज्ञ हैं, जो गरुड़ पर विराजमान हैं, जिनका प्रकाश नील मेघ के समान है, जो शंख, चक्र, गदा और पद्म को धारण करने वाले हैं उन योग से युक्त आपके लिए मेरा प्रणाम समर्पित है।

जिनका गगन, भूमि, दिशायें, जल, ज्योति, वायु और काल स्वरूप है उनके लिए मेरा नमस्कार है। जिनके कार्यों के अगस्थ में प्रधान और पुरुष निवास किया करते हैं उन अव्यक्त रूप वाले गोविन्द के लिए नमस्कार है। जो स्वयं हैं और जो भूत हैं, जो स्वयं उसके गुणों से पर हैं, जो स्वयं ही इस जगत का आधार हैं उनके आपके लिए नमस्कार है तथा बारम्बार प्रणाम है। जो सबसे पर तथा पुराण हैं, जो पुराणपुरुष और जगन्मय परमात्मा हैं जो अक्षय और व्यथा से रहित हैं उस देश के लिए बारम्बार नमस्कार है। जो ब्रह्मा का स्वरूप धारण करके इस सृष्टि की रचना किया करते हैं और जो विष्णु से स्वरूप से इस जगत् का परिपालन करते हैं तथा जो रुद्र के रूप में होकर इस जगत् का संहार किया करते हैं उस आपकी सेवा में बारम्बार मेरा प्रणिपात समर्पित है। कारणों के भी कारण, दिव्य अमृतज्ञान और विभूति के प्रदाता, समस्त अन्य लोकों को मोह के दाता हैं उन प्रकाश स्वरूप वाले परात्पर के लिए बारम्बार नमस्कार हैं। जिसका महान प्रपञ्च जगत् कहा जाया करता है जो भूमि, दिशायें, सूर्य, चन्द्र, मनोजव, वह्नि, मुख, नाभि से अन्तरिक्ष है उन भगवान हरि आपके लिए नमस्कार है।

आप पर परमात्मा हैं, हे हरे! आप विविध विद्या हैं, आप शब्दब्रह्म और विचार के पर से भी पर हैं। जिस जगत् के पति का न तो आदि है, न मध्य और अन्त ही होता है उन देव का मैं किस प्रकार से स्तवन करूँ जो देव वाणी, मन के गोचर से भी बाहिर अर्थात् पर हैं, जिनके स्वरूपों का ब्रह्मा आदि देवगण तथा तप के भी धनवाले मुनिगण भी विवरण नहीं किया करते हैं उनके रूप मेरे द्वारा किस प्रकार से वर्णन करने योग्य हो सकते हैं ? उन निर्गुण प्रभु के गुण मुझ स्त्री जाति वाली के द्वारा कैसे जानने के योग्य हो सकते हैं ? जिनके स्वरूप को इन्दु आदि सुर और असुर भी नहीं जानते हैं। हे जगत् के नाथ! आपके लिए नमस्कार है। हे तप से परिपूर्ण! आपके लिए नमस्कार है। हे भगवान्, आप प्रसन्न हो गए आपके लिए बारम्बार नमस्कार है। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–इसके अनन्तर उसका शरीर वल्कल और अजिन (मृगचर्म) से संवृत था तथा बहुत ही क्षीण और मस्तक पर पवित्र जटा-जूटों में राजित था अर्थात् परम शोभित था। मादिनी में सर्जित कमल के सदृश मुख को देखकर भगवान हरि कृपा से समावष्टि होकर उस सन्ध्या से यह बोले।

श्री भगवान ने कहा–हे भद्रे! आपकी इस परम दारुण तपश्चर्या से मैं अधिक प्रसन्न हो गया हूँ। हे शुभ प्रज्ञा वाली! मुझे आपकी स्तुति से अधिक प्रसन्नता हुई है। अब आप मुझसे वरदान जो भी अभीष्ट उसे प्राप्त कर लो। जिस वर से उनका मनोगत कार्य हो मैं उसको कर दूँगा, तुम्हारा कल्याण होवे, मैं तुम्हारे इन व्रतों में परम हर्षित हो गया हूँ। सन्ध्या ने कहा–हे देव! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं और मेरी इस तपश्चर्या से आपको आह्लाद हुआ है तो अब मैंने प्रथम बार व्रत किया है उसी को आप करने की कृपा कीजिए। हे देवेश्वर! उत्पन्न मात्र ही प्राणी इस नभस्तल में क्रम से ही सकाम न होवें, वे सम्भव होवें। मैं तीनों लोकों में परम पतिव्रता प्रथित हो जाऊँगी जैसे कोई दूसरी न होवे। मैंने यह एक बार व्रत किया है। काम वासना से संयुत मेरी दृष्टि कहीं पर भी न गिरेगी। हे जगत् के स्वामिन्! पति को छोड़ कर कहीं

पर मेरी सकाम दृष्टि नहीं होवे। यह भी मेरा परम सुकृत होगा। जो कोई भी पुरुष कामवासना से युक्त होकर मुझे देखे उसका पुरुषत्व विनाश को प्राप्त हो जावेगा और वह क्लीव अर्थात् नपुंसक हो जावेगा।

श्री भगवान् ने कहा–प्रथम तो शैशव भाव हुआ करता है और दूसरा कौमार नाम वाला भाव होता है, तीसरा यौवन का भाव है और चतुर्थ वार्द्धक भाव होता है। तीसरे भाव अर्थात् यौवन के भाव को सम्प्राप्त हो जाने पर जो एक शरीरधारी अवस्था का भाग है मनुष्य उसमें ही कामवासना से समन्वित हुआ करते हैं। कहीं-कहीं पर द्वितीय भाव के अन्त में भी हो जाते हैं। मैंने आपके तप से जगत् में मर्यादा स्थापित कर दी है कि उत्पन्न होते ही शरीर धारी सकाम नहीं होंगे और आप तो लोक में उस प्रकार का भाव प्राप्त करेंगी कि तीनों लोकों में अन्य किसी का भी ऐसा भाव नहीं होगा। जो भी कोई बिना आपके पाणिग्रहण करने के किए हुए कामवासना से युक्त होकर आपको देखेगा वह तुरंत ही क्लीवता अर्थात नपुंसकता को प्राप्त करके अतीव दुर्बलता को पा लेगा। आपका पति तो बहुत बड़े भाग्य वाला होगा जो सुन्दर रूप लावण्य से और तप से समन्वित होगा। वह आपके ही साथ रहकर सात कल्पों के अन्त पर्यन्त जीवन के धारण करने वाला होगा। ये जो भी वरदान आपने मुझसे प्रार्थित किए थे व सब मैंने पूर्ण कर दिये हैं और अन्य भी मैं आपको बतलाऊँगा जो कि पूर्व में आपके मन में स्थित था।

आपने पूर्व में ही अग्नि में अपने शरीर के परित्याग करने की प्रतिज्ञा की थी वह प्रतिज्ञा बारह वर्ष तक होने वाले मुनिवर मेधातिथि के यज्ञ में की थी। हुत से प्रज्जवलित अग्नि में शीघ्र ही आप गमन करें। उस पर्वत की उपत्यका में चन्द्रभागा नदी के तट पर तापसों के आश्रम में मेधातिथि महायज्ञ कर रहे हैं वहाँ पर जाकर स्वयं छन्न होती हुई जिसको मुनियों ने भी नहीं देखा है, मेरे प्रसाद से वह्नि से जलकर आप उसकी पुत्री होंगी। जो भी अपने मन के द्वारा अपने पति होने की थी वह जो भी कोई हो उसको अपने मन में धारण करके अपने शरीर

का त्याग वह्नि में कर दो। हे सन्ध्ये! जब आप इस परम दारुण पर्वत में तपश्चर्या कर रही हो उस तप को करते हुए चारों युग व्यतीत हो गयें हैं तथा कृतयुग के व्यतीत होने पर त्रेता के प्रथम भाग में दक्ष की कन्या उत्पन्न हुई थी। उस प्रजापति दक्ष ने सत्ताईस अपनी कन्याओं को चन्द्रदेव के लिए दे दिया था।

उन कन्याओं के लिए जिस समय में क्रोधयुक्त दक्ष के द्वारा चन्द्रदेव को शाप दिया गया था उस समय में आपके समीप में सभी देवगण समागत हुए थे। हे सन्ध्ये! उसके द्वारा ब्रह्मा के साथ देवगण नहीं देखे गये थे क्योंकि आपने मुझमें ही अपना मन लगा रखा था। अतः आप भी उनके द्वारा नहीं देखी गई थीं। चन्द्रदेव को दिए हुए शाप को छुटकारे के लिए जिस प्रकार से विधाता ने चन्द्रभाग नदी की रचना की थी उसी समय में यहाँ पर मेधातिथि उपस्थित हो गया था। तप से उसके समान कोई भी अन्य नहीं है और न अब तक कोई हुआ ही है तथा भविष्य में ही कोई ऐसा तपस्वी नहीं होगा। उस मेधातिथि ने महान् विधि वाला ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ का आरम्भ किया था। वहाँ पर जो वह्नि प्रज्वलित है उसी में अपने शरीर का त्याग करो। हे तपस्विनी! यह मैंने तुम्हारे की कार्य के सम्पादन करने के लिए स्थापित किया है। हे महाभागे! आप वह करिए और उस महामुनि के यज्ञ में गमन करिए।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा--भगवान् नारायण ने स्वयं ही अपने कर के अग्रभाग से इसके अनन्तर सन्ध्या का स्पर्श किया था। इसके पश्चात् एक ही क्षण में उसका शरीर पुरोडाश से परिपूर्ण हो गया था। इस प्रकार से करके जगत् के स्वामी वहाँ पर अन्तर्धान हो गये थे और वह सन्ध्या उस सत्र में गई थी जहाँ पर मेधातिथि मुनिवर विद्यमान थे। उसके अनन्तर भगवान विष्णु के प्रसाद से किसी के भी द्वारा उपलक्षित होती होई सन्ध्या देवी ने मेधातिथि मुनि के लिए उपदेश दिया था। उसी तपश्चर्या के उपदेश को मन में करने उस समय सन्ध्या ने पतित्व के रूप से ब्रह्मचारी ब्राह्मण का वरण रखा था। उस महायज्ञ में समिद्ध

अग्नि में मुनियों के द्वारा उपलक्षित न होती हुई उस समय में भगवान विष्णु ने प्रसाद से विधाता की पुत्री ने प्रवेश किया । फिर उसी क्षण में उसका शरीर पुरोडाश से परिपूर्ण हो गया था। दग्ध हुई पुरोडाश की गन्ध लक्षित होती हुई ही विस्तार को प्राप्त हो गई थी।

वह्नि ने उसके शरीर का दाह करके पुनः भगवान् विष्णु की ही आज्ञा से शुद्ध को सूर्य मण्डल में प्रवृष्टि कर दिया था। सूर्य का दो भागों में विभाग करके उसके शरीर की उस समय में रथ में जो अपना था, पितृगण और देवों की प्रीति के लिए संस्थापित कर दिया था। उसका अर्धभाग हे द्विजोत्तमो! अर्थात् उसके शरीर का आधा हिस्सा प्रातः सन्ध्या हो गई थी जो अहोरात्र आदि के मध्य में रहने वाली थी। उसका शेष भाग था जो अहोरात्रान्त के मध्य में रहने वाली वही वह सायं सन्ध्या हो गयी थी। जो सदा ही पितृगणों की प्रीति को प्रदान करने वाली थीं। सूर्योदय से प्रथम जो अरुण का उदय जिस समय में होना है प्रातः सन्ध्या उसी समय में उदित हुआ करती है जो देवगणों की प्रीति को करने वाली हैं।

सूर्यदेव के अस्ताचलगामी होने पर शोण (रक्त) पद्म के सदृश होती है वह सायं सन्ध्या भी समुदित हुआ करती है जो पितृगणों के मोद के करने वाली हुआ करती है। उनके प्राणों को प्रभु भगवान के द्वारा शरीरों के दिव्य शरीर से ही किये थे।

महामुनि के यज्ञ के अवसान के अवसर प्राप्त करके हो जाने पर मुनि के द्वारा तपे हुए सुवर्ण की प्रभा के तुल्य पुत्री वह्नि के मध्य में प्राप्त हुई थी। उस समय में उस पुत्री को मुनि ने आमोद से समन्वित होकर ग्रहण कर लिया था। उस पुत्री को यथार्थ जल में संस्पनन कराकर कृपा से युत होते हुए अपनी गोद में रखा था और उनका नाम अरुन्धती, यह महामुनि ने रखा था। वे शिष्यों में परिवृत होते हुए वहाँ पर महान मोद को प्राप्त हुए थे।

वह जिस किसी भी कारण से धर्म का विरोध नहीं करती थी अतएव त्रिलोकी में विदित नाम उसने प्राप्त किया था अर्थात् वह जैसा

करती थी वैसा ही नाम की प्राप्ति उसने की थी। उन मुनि ने यज्ञ को समाप्त करके कृतकृत्य भाव को प्राप्त किया था और तनया के प्रलम्भ से वे सम्मदयुत हुए थे। उस अपने आश्रम के स्थान में अपने शिष्य वर्गों के सहित महर्षि उसी अपनी तनया को प्यार किया करते थे और निरन्तर उसी को प्रिय बना लिया था।

वशिष्ठ अरुन्धति विवाह

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–इसके अनन्तर वह देवी उन मुनिवर के आश्रम में बड़ी हो गई थी जो कि चन्द्रभागा नदी के तट पर तापसारण्य नाम वाला था। जिस प्रकार से चन्द्रमा की कला शुक्लपक्ष में नित्य ही प्रवर्द्धित हुआ करती है जैसे ज्योत्सना बढ़ा करती है उसी भाँति वह अरुन्धती भी वृद्धि को प्राप्त हुई थी। उस समय में पाँचवा वर्ष के सम्प्राप्त होने पर गुण गुणों के द्वारा उस सती चन्द्रभागा ने भी उस ताप सारण्य को भी परम पवित्र कर दिया था। वहाँ पर मेधातिथि द्वारा निषेचित महापुण्य वाला तीर्थ था जो अरुन्धती की क्रीड़ा का स्थान था और उन अरुन्धती ने बाल्योचित कृत्य से पूत किया था। आज भी तापसारण्य में चन्द्रभागा नदी के जल में मनुष्य अरुन्धती तीर्थ के जल में स्नान करके अन्त में हरि की प्राप्ति किया करता है। कार्तिक के पूरे मास में चन्द्रभागा नदी के जल में स्नान करके विष्णु भगवान के लोक में प्राप्त होकर अन्त में मोक्ष की प्राप्ति किया करता है। माघ मास में पूर्णमासी अथवा अमावस्या में उसी भाँति चन्द्रभागा के जल में स्नान करता है और एक-एक बार ही किया करता है।

उस पुरुष के वंश में महारोग कभी भी नहीं होगा। देह के अन्त में वह पुरुष चन्द्र भवन को जाकर फिर वह भगवान हरि के लोक में चला जाया करता हैं। जब पुण्य का क्षय हो जाया करता है तभी यहाँ संसार में आकर अर्थात् पुनः जन्म ग्रहण करके वेदों का ज्ञाता ब्राह्मण होता है। चन्द्रभागा नदी का जल पीकर वह मनुष्य चन्द्रलोक को प्राप्त किया करता है। विधि के साथ एक बार स्नान करके अयुत (दस

हजार) वाजपेय यज्ञ के पुण्य को प्राप्त किया करता है। चन्द्रभागा के जल में स्नान करके बाल्य लीला से क्रीड़ा करती हुई पिता के समीप में उसके तट पर किसी समय में उस अरुन्धती को आकाश मार्ग से जाते हुए ब्रह्माजी ने अरुन्धती को उस काल में उपदेश में देखा। इसके उपरान्त उस समय में मुनियों के द्वारा परिपूजित जो कि मेधातिथि आदि थे ब्रह्माजी ने उस महामुनि से समुचित कहा था।

ब्रह्माजी ने कहा–हे महामुनि! यह अरुन्धती के उपदेश का काल है। इस कारण इसको सती स्त्रियों के मध्य में सन्निधि वाली करो। बहुला सावित्री और सावित्री के समीप में आप पुत्री को स्थापित करिये। हे महामुने! आपकी पुत्री उन दोनों का संसर्ग प्राप्त करके महान् गुण गण और ऐश्वर्य से संयुत शीघ्र ही हो जायेगी। परमात्मा ब्रह्माजी ने वचन का श्रवण करके मेधातिथि से उस समय में ऐसा ही होगा, यह मुनिश्रेष्ठ ने कहा था। इसके अनन्तर सुर श्रेष्ठ के चले जाने पर मेधातिथि मुनि अपनी पुत्री को लेकर उसी क्षण में सूर्य भवन के प्रति गमन किया था। वहाँ पर सूर्य मण्डल के मध्य में विराजमान सावित्री को देखा था। जो कि पद्म के आसन पर संस्थित थी और वह देवी अक्षों की माला को धारण करने वाली एवं सितवर्ण वाली थी। रवि के मण्डल से निकलकर उस मुनि के द्वारा वह देखी गई थी। वह बहुला शीघ्र ही मानस पर्वत के प्रस्थ पर चली गयी थी। वहाँ पर प्रतिदिन सावित्री, गायत्री तथा बहुला, सरस्वती और द्रुपदा के पाँचों मानस अनल पर थी।

वहाँ पर लोकों की हितकामना से परस्पर में धर्माख्याओं के द्वारा साध्वी कथाओं को कहकर फिर अपने-अपने स्थान को चली जाया करती थी। तप ही जिसका धन था। हे माता! आप तो समस्त लोकों की माता है मैं आपको पृथक-पृथक प्रणाम समर्पित करता हूँ। उस तपोधन ऋषि ने उन सबसे परम मधुर वचन कहा था और वह उन सबको एक ही स्थान में सम्मिलित हुई का दर्शन करके बहुत ही भयभीत और विस्मित हुआ था। मेधातिथि ने कहा–हे माता सावित्री!

हे माता बहुले! यह मेरी महान् यज्ञ वाली पुत्री है। अब इसके उपदेश करने का समय आ गया है। उसी के लिए मैं यहाँ पर समागत हुआ हूँ। यह जगत् के सृजन करने वाले के द्वारा आज्ञा प्राप्त करने वाली हुई है कि यह आपकी शिष्यता को प्राप्त करे अर्थात् आपकी शिष्य हो जावे। इस कारण से यह मेरी पुत्री आपके समीप में लाई गई है। जिस प्रकार से इसकी सुचरित्रता होवे उसी प्रकार से इस मेरी बालिका को आप दोनों देवी बना देवें। हे माताओं! आप दोनों के लिए प्रणाम अर्पित है। इसके उपरान्त उस समय में देवी सावित्री मन्द मुस्कराहट के साथ बहुला के सहित उस मुनियों में श्रेष्ठ से कहा था और उस बालिका से भी कहा था।

उन दोनों देवियों ने कहा–हे ब्राह्मण! भगवान विष्णु के प्रसाद से आपकी पुत्री बहुत ही चरित्र वाली है। हे मुने! यह तो पहले ही ऐसी सुयोग्य हुई है फिर इसको उपदेश देने से क्या लाभ है। तात्पर्य यही है कि जो यह आपकी पुत्री पहले ही से परम योग्य है तो फिर इसको उपदेश देने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। किन्तु मैं और महासती बहुला ब्रह्मवाक्य के होने से आपकी धैर्य वाली सुता को विनीत बनायेंगी अर्थात् सदुपदेशों के द्वारा परम विनीत ऐसे ढंग से कर देंगी के उसमें विशेष विलम्ब नहीं होगा। यह पहले ब्रह्माजी की पुत्री थी आपके तपोबल के कारण से तथा भगवान विष्णु के प्रसाद से यह अरुन्धती आपकी सुता हुई है। यह सती आपके कुल को पवित्र करती है और उसकी वृद्धि की करेगी। यह लोकों को और देवों का कल्याण ही करेगी। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इसके अनन्तर यह मेधातिथि मुनि के द्वारा विदा होकर उसने अपनी पुत्री अरुन्धती को आश्वासन दिया था और फिर उनको प्रणाम करके वह अपने आश्रम को चले गये थे। उस मुनिवर के चले जाने पर अरुन्धती उन दोनों के साथ माताओं की ही भाँति निडर पाली हुई थीं और उसने भी आनन्द प्राप्त किया था। किसी समय में रात्रि में सावित्री के साथ वह रतिदेव के गृह को जाया करती थी और किसी समय में बाहुल्य के साथ इन्द्रदेव के घर में जाती थी।

इसी रीति से वह देव उन दोनों के साथ सुरों के आलय में अर्थात् स्वर्गलोक में विहार करती उसने दिव्यमान से अर्थात् वेदों की गणना के हिसाब से सात परिवत्सर व्यतीत कर दिये थे। उन दोनों के साथ ये बैठी हुई उस सती ने शीघ्र ही स्त्री धर्म को सम्पूर्णता से जान गयी थी अर्थात् स्त्रियों का पूरा धर्म का ज्ञान उसने प्राप्त कर लिया था और वह सावित्री तथा बहुला से भी अधिक ज्ञानवती हो गयी थी। इसके अनन्तर उसको उस समय समुचित काल के सम्प्राप्त होने पर यौवन का उद्भेद हो गया था अर्थात् यौवनावस्था के चिह्न प्रकट हो गये थे जिस प्रकार से पद्मिनीयों की रुचि हुआ करती है। उद्भूत यौवन वाली उसे मानस अचल में विहार करती हुई अकेली ही ने सुन्दर तेज वाले वशिष्ठ मुनि को देखा था। उस सती ने उस समय में उस मुनि का अवलोकन करके कामवासना की भावना से बालसूर्य के तुल्य प्रभा वाले सुन्दरतम रूप ब्राह्मण की श्री से समन्वित इसकी इच्छा की थी अर्थात् उसे प्राप्त करने की लालसा उसको हो गयी थी। इसके उपरान्त महान तेज वाले उन वशिष्ठ मुनि ने भी उस परवर्णिनी का अवलोकन करके अद्भुत काम वाला होते हुए उस अरुन्धती को देखा था। हे द्विज श्रेष्ठों! इस रीति से परस्पर में एक दूसरे का अवलोकन करके महान काम की वृद्धि हो गई थी। जिस तरह से किसी प्राकृत अर्थात् साधारण व्यक्ति को बिना ही मर्यादा के कामदेव समुत्पन्न हो जाया करता है। तात्पर्य यह है कि सामान्य की ही भाँति कामवासना उद्भूत हो गई थी।

इसके अनन्तर उस प्रकार उस मेधातिथि की पुत्री ने धीरज का आलम्बन किया था और अपनी आत्मा को तथा मदन (कामदेव) से प्रेरित मन को धारण किया था अर्थात् अपने आपको मन को संयत रखा था। महान् तेजस्वी वशिष्ठ मुनि ने भी अपनी आत्मा में धैर्य रखकर कामवासना से उन्मथित मन को स्तम्भित किया था। इसके अनन्तर देवी अरुन्धती ने मुनि की सन्निधि का त्याग करके अपने मनोरथ की बुराई करती हुई जहाँ पर सावित्री थी वहाँ पर ही वह चली गई थी। वह महासती मानस दुःख की अधिकता से बाध्यमाना होती हुई

मैंने सती का भाव परित्याग कर दिया है, यही वह चिन्तन कर रही थी। उसका कामवासना के द्वारा समुत्पन्न दुःख से मुख कान्तिहीन हो गया था उसका सम्पूर्ण शरीर भी म्लान हो गया था और गति भी मलिन हो गयी थी और उसने यह विचार किया था और अपने मन की गर्हणा (बुराई) करती थी कि यह मन की वृत्ति मृणाल के तन्तु के ही समान परम सूक्ष्म है और उस क्षण में छिन्न हो जाया करती है। सतियों की स्थिति अत्यन्त अल्प चलपता से ही विनष्ट हो जाया करती है। यही सती के धर्म को पढ़ाकर मुझे चरित्र व्रत वाली सावित्री ने कहा था।

सावित्री देवी ने धर्म को यह सार उद्धृत किया था अर्थात् मुझे बतलाया था यह आज परकीय पुरुष में मनोरथ से नष्ट कर दिया है। तात्पर्य यह है कि दूसरे पुरुष में रम जाने ही से वह नष्ट हो गया है। उस समय उस मेधातिथि की पुत्री अरुन्धती क्या वहाँ पर पराये में मेरा मन होगा इसी विचार को बढ़ाते हुए यही वह चिन्तन कर रही थी। दुःख से आर्त्त वह बहुला और सावित्री देवी के समीप पहुँच गयी थी। उस प्रकार से परम चिन्तित होती हुई, कान्तिहीन मुख वाली उस सती को देखकर ध्यान के चिन्तन में परायण होकर सावित्री ने विचार किया था और दिव्य ज्ञान के द्वारा विचार करती हुई उस सती को पूरा ज्ञान हो गया। जिस प्रकार से वशिष्ठ मुनि ने साथ अरुन्धती का अवलोकन हुआ था और जैसा उन दोनों में अत्यन्त दुःसह कामवासना प्रवृद्ध हुई थी। दिव्य दर्शन करने वाली सावित्री ने अरुन्धती के मुख की कान्ति की हीनता का हेतु भी जान लिया था। इसके अनन्तर उस सावित्री के मेधतिथि की पुत्री के मस्तक पर हाथ रखकर उस महादेवजी ने जो चरित्र व्रत वाली सावित्री थी यही कहा था–हे बेटी! किस कारण से तुम्हारा मुख भिन्न वर्ण वाला हो गया है ?

हे गुणोत्तमे! जिस प्रकार से नाल से छिन्न होने वाला पद्म जो सूर्य के ताप ते तापित हुआ होता है उसी भाँति तेरा शरीर कैसे म्लान हो गया है। जिस तरह से चन्द्र का बिम्ब छोटे से काले बादल के द्वारा सवृत होकर मलिन हो जाया करता है वैसे ही तुम्हारा मुख हो गया है।

हे भद्रे! तुम्हारे मन का आन्तरिक भाव की चिन्ता से युक्त जैसा लक्षित हो रहा है। इसलिए तुम मुझे जो भी गोपनीय रहस्य की बात हो और जो भी इस दुःख का कारण हो उसे बतला दो। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इसके अनन्तर वह नीचे की ओर मुख वाली होकर लज्जा से कुछ भी नहीं बोली थी जबकि बड़ी माता सावित्री के द्वारा वह पूछी भी गई थी तब भी बस लज्जा से कुछ भी नहीं बोली थी। जब मेधातिथि की पुत्री अरुन्धती ने उस समय में कुछ भी नहीं कहा था तो मनस्विनी सावित्री ने स्वयं प्रकाश करके उससे कहा था। हे वत्से! जो तुमने सूर्य के समान प्रभा से समन्वित मुनि को देखा था वह ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ठ मुनि हैं जो कि तेरा स्वामी होगा और उसका दाम्पत्य भाव को होना तो पहले ही विधाता ने निर्मित कर दिया है। इसलिए आपका जो सतीभाव है वह उस मुनि दर्शन से हीन नहीं हुआ है अथवा जो उसके दर्शन से आपका हृदय कामवासना से संयुत हो गया है इससे भी सतीभाव का निवास नहीं हुआ है। अतएव जो तुम्हारे मन में दुःख है उसका परित्याग कर दो। हे शोभने! तुमने पूर्व जन्म में परम दारुण तप करके ही उस मुनि को अपना पति बनाना तय किया था। इसी कारण से वह भी तुम्हारे लिए सकाम हो गये थे। हे वत्से! तुम श्रवण करो कि अपने ही इस वशिष्ठ मुनि को अपने पति के स्थान में वरण किया था जैसा कि वहाँ पर जिस भाव से निरन्तर आपने तप किया था।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–उस सावित्री ने यह कहकर जैसे पहले सन्ध्या हुई थी और अपने चन्द्रभागा के तट पर पर्वत में जिसके लिए तप किया था जिस तरह से ब्रह्मचारी के रूप में वशिष्ठ मुनि ने बोधा के वचन से उपदेश की हुई तपस्या की थी और जैसे भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुए थे। जिस प्रकार से उसके लिए वर दिया था और जैसे भार्या ही की स्थापना की थी अथवा जिस प्रकार से उसके द्वारा वशिष्ठ मुनि को अपना पति होना चाहा था। जिस प्रकार से मेधातिथि ने यज्ञ किया था और जैसे तुमने अपने शरीर का त्याग किया था और जिस रीति से उसकी पुत्री ने जन्म ग्रहण किया

था उस समय में उसको यह विस्तारपूर्वक क्रम से बहुला के साथ सावित्री से कहा था।

इसके अनन्तर इसके वचन का श्रवण करके जो भी पूर्व जन्म में हुआ था। उस समय में यह सुन करके मेरे मन में जो था वह मैंने जान लिया था। इस रीति से वह अत्यधिक लज्जा को प्राप्त कर नीचे की ओर मुख वाली हो गई थी और सावित्री के वचन से वह पूर्व जन्म के स्मरण वाली हो गई थी। उसी भाँति अधोमुखी होकर पूर्व जन्म में जो भी हुआ था उस समय में उस दिव्य ज्ञान वाली अरुन्धती ने सब घटनाओं का स्मरण किया था। पहले भगवान् विष्णु के प्रसाद से वह दिव्य दर्शन होकर इस समय में वह दिव्य दर्शन वाली बाल्यभाव के द्वारा प्रच्छन्न हो गई थी। सावित्री के वचन का श्रवण करके पूर्व जन्म में वृतान्त को सबको प्रत्यक्ष की ही भाँति वह सम्पूर्ण पूर्व ज्ञान को प्राप्त करने वाली हो गयी थी। पूर्व ज्ञान की प्राप्ति करके जो पहले भगवान विष्णु ने दिया था कि मैंने पूर्ण जन्म में इन्हीं वशिष्ठ मुनि का अपने स्वामी के स्थान में वरण किया था। इस ज्ञान के रखने वाली वह देवी अरुन्धती स्वयं ही परम आमोद से समन्वित हो गयी थी और वशिष्ठ मुनि ने दर्शन से पूर्व में उसकी कामवासना के अद्भुत होने का भी पूर्ण ज्ञान हो गया था।

जिस प्रकार से उसके मन में सतीत्व के निवारण करने में आतंक समुत्पन्न हो गया था उस समय में उस मेधातिथि की पुत्री ने उस समय में उस आतंक को स्वयं ही त्याग दिया था। इसके उपरान्त चिन्ता को त्याग देने वाली उस अरुन्धती सती को समझकर तब सावित्री सूर्यदेव के भवन को चली गई थी। इसके अनन्तर सावित्री अरुन्धती को उस सूर्यदेव के मन्दिर में बिठाकर वह सर्वज्ञा और श्रेष्ठ सती सावित्री ब्रह्माजी के भवन को चली गई थी वहाँ पर ब्रह्माजी को प्रणाम किया था और ब्रह्माजी के द्वारा पूछी गई उस सावित्री से अमित ओज वाले ब्रह्माजी ने कहा था–हे भगवान्! आप तो समस्त जगतों के स्वामी हैं। आपके पुत्र वशिष्ठ मुनि को मानस पर्वत के शिखर पर उस सती

अरुन्धती ने देखा था। फिर उसके केवल अवलोकन करते ही कामदेव की वासना अधिक बढ़ गई थी। हे प्रजापते! वे दोनों ही परस्पर स्पृह करने वाले हुये थे। वे दोनों ही ने बड़े धीरज से बहुत ही दुःखित होकर काम की वासना का स्तम्भन किया था। वे दोनों ही अन्य मनस्क होकर अथवा उदास होते हुए परम लज्जित होकर अपने-अपने स्थान को चले गये थे।

हे सुरश्रेष्ठ! ऐसा हो जाने पर जो भी कुछ समुचित होवे उस समय में यही आप कीजिए। भविष्य काल की भलाई में लोकों की हितकामना से वही आप करें जो उचित हो। समस्त जगतों के गुरु ब्रह्माजी ने यह उसके वचनों को श्रवण करके आगे होने वाले कर्म की प्रवृत्ति का दिव्य ज्ञान के द्वारा दर्शन किया था अर्थात् समझ लिया था कि भविष्य में क्या होने वाला है। उस अवसर पर लोक पितामह ने इसका स्वागत ही किया था क्योंकि उन दोनों के दाम्पत्य भाव का समय यह उपस्थित हो गया था। इसीलिए लोकों के हित के लिए उसकी प्रवृत्ति के लिए अवश्य ही जाऊँगा। ऐसा मन के द्वारा निश्चय करके सावित्री के साथ ब्रह्माजी ने गमन किया था और वे मानव गिरि के प्रस्थ पर गये थे जहाँ पर कि उन दोनों का दर्शन हो जावे। पितामह के वहाँ चले जाने पर शिव समस्त सुरगुणों सहित नन्दी प्रभृति गणों के साथ वृषभध्वज वहाँ पर आ गये थे। भगवान वासुदेव भी ब्रह्माजी के द्वारा परिचिन्तित होकर वहाँ पर आ गये थे जो कि जगत् के साथ वह भी भक्ति की भावना से शंख, चक्र, गदा के धारण करने वाले थे। जहाँ पर ब्रह्मा और शिव स्थित थे वे भी वहाँ पर स्वयं ही आ गये थे। इसके अनन्तर जगतों के स्वामी ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर इन तीनों ने मेधातिथि के समीप में देवर्षि नारदजी को दूत बनाकर भेजा था।

उन्होंने नारदजी ने कहा-हे नारद! आप शीघ्र ही चन्द्रभागा नामक पर्वत पर चले जाइए। वहाँ पर उस पर्वत की उपत्यका में परम श्रेष्ठ मुनि मेधातिथि विराजमान हैं। आप उनको हमारे वचन से यथाकाम स्वयं ही हमारे पास ले आइए। आप स्वयं ही मेधातिथि को साथ में

लाकर शीघ्र ही यहाँ पर आ जाइए। ब्रह्मा आदि के वचन का श्रवण करके नारदजी शीघ्र ही चले गये थे और सब कार्य की सिद्धि के लिए वे मेधातिथि को वहाँ पर लाने के लिए प्रस्थान कर गए थे। उन देवर्षि ने मेधातिथि से सम्भाषण करके देवों के वचनों से मेधातिथि को अपने साथ लाकर मानस पर्वत पर चले गये थे। वहाँ मानस पर्वत पर समस्त देवगण इन्द्र के सहित और सब तपोधन, मुनिगण, साध्य, विद्याधर, दक्ष और गन्धर्व भी वहाँ पर समागत हो गये थे। सब देव और समस्त देवियों और जो देवों के अनुचर थे तथा जो अन्य जन्तुगण थे वे सभी मानस के प्रस्थ को समायात हो गये थे। इसके पश्चात् देवों के समाज के सम्पन्न हो जाने पर कमलासन ने मेधातिथि मुनि से अतिदेश करते हुए यह वचन कहा था।

ब्रह्माजी ने कहा–हे मेधातिथे ! आप अपनी सुचारित व्रत वाली पुत्री अरुन्धती को इस देवों के समाज में ब्रह्मविधि से दे दीजिए। मैंने इन दोनों का वर वधू होना पहले ही सृजित कर दिया है। भगवान हरि ने भी इस परम समुचित कर्म के विषय में आज्ञा प्रदान कर दी थी। ऐसा समाचरण करने पर आपके कुल में बड़ा भारी यश होगा और इससे समस्त प्राणियों की भलाई भी होगी। अतएव शीघ्र ही दे दीजिए और इस कार्य में विलम्ब नहीं कीजिए। फिर ब्रह्माजी ने इस वचन का श्रवण करके वह मुनि बहुत ही अधिक प्रसन्न हुए थे और उन्होंने कहा था–'ऐसा ही होगा' फिर उसने समस्त देवों को प्रणाम किया था। उस मुनि के वचन का श्रवण करके वह अपनी पुत्री अरुन्धती को ले आये थे। ध्यान में स्थित वशिष्ठ मुनि के समीप में देवों के साथ चले गये थे। देवों के द्वारा पतिव्रत मुनि ने वशिष्ठ जी के समीप में पहुँचकर जो मुनि ब्रह्मश्री से देदीप्यमान थे और प्रज्जवलित अग्नि के ही समान कान्ति वाले थे। उनके पृथक-पृथक उस मानस पर्वत की कन्दरा में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में बुद्धि को धारणा किये हुए समासीन मुनि का दर्शन किया था। वहाँ पर अरुन्धती के पिता के ओजस्वियों में परमश्रेष्ठ, उदितवान सूर्य के समान, नियत आत्मा वाले वशिष्ठ मुनि